धर्मायण

विषय - सूची

हनुमज्जागरणस्तुतिः
भवनाथ झा 2

अब लौं नसानीं अब ना नसैहौं- ३
सुरेश चन्द्र मिश्र 4

पाण्डवगीता
सम्पादक- शशिनाथ झा 7

बक्सर में गंगा : अतीत से वर्तमान तक
लक्ष्मीकान्त मुकुल 31

कोशी किनारे के लोकगीत
मगनदेव नारायण सिंह 39

अष्टावक्र गीता - हिंदी पद्यानुवाद
उमाशंकर सिंह 41

यज्ञ का आधार है मन्त्र-शक्ति
अशोक कुमार मिश्र 43

पाटलिपुत्र की ऐतिहासिक विरासत
ओम प्रकाश सिन्हा 45

तुलसी के मानवतावाद की प्रासंगिकता
आशुतोष मिश्र 47

आदि शंकराचार्य
सविता मिश्रा 'मागधी' 51

कलियुग का काल
उषा रानी 56

गण्डमूल दोष : भ्रान्ति एवं वास्तविकता
राजनाथ झा 57

श्रवण कुमार पुरस्कार योजना 62

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोध परक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

अंक : 89
अप्रैल-जून, 2016
वैशाख-आषाढ़, 2073

प्रधान सम्पादक
भवनाथ झा

सहायक सम्पादक
श्री सुरेशचन्द्र मिश्र

अतिथि सम्पादक
श्री मगनदेव नारायण सिंह

महावीर मन्दिर प्रकाशन
के लिए
प्रो. काशीनाथ मिश्र
द्वारा प्रकाशित
तथा
प्रकाश ऑफसेट, पटना में मुद्रित
अक्षर संयोजक दिनकर कुमार

पत्र-सम्पर्कः

धर्मायण,
पाणिनि-परिसर,
बुद्ध-मार्ग,
पटना-800001
दूरभाष – 0612-3223293
E-mail: mahavirmandir@gmail.com
Web: www.mahavirmandirpatna.org

मूल्य : **पन्द्रह रुपये**

नमसा विधेम

हनुमज्जागरणस्तुतिः

(महावीर मन्दिर, पटना के हनुमानजी का जागरण स्तोत्र)

प्रणेता- पं. भवनाथ झा

श्रीमत्पाटलिपुत्रनामनगरे गङ्गाम्भसाक्षालिते
श्रीकालीपटनेश्वरीविलसिते गौरीशिवाभ्यां युते।
श्रीगोविन्दगुरोः समुद्भवपुरेऽशोकादिभूपैर्भृते
ब्राह्मः काल उपागतोऽस्ति हनुमन् जागृष्व नाथ प्रभो॥१॥

शोभा से भरे पाटलिपुत्र नामक नगर, जो गंगा की धारा से धुला हुआ है, जहाँ काली, पटनेश्वरी और गौरीशंकर विराजमान हैं, जो नगर गुरु श्री गोविन्द सिंह का जन्मस्थान है और अशोक आदि राजाओं से पालित है, उस नगर में ब्राह्म मुहूर्त आ गया है। हे हनुमान्, हे नाथ, हे प्रभो, आप जागें।

हर्म्ये हाटककुम्भसंहतियुते शैलाग्रसंगञ्जने
तुङ्गेऽभ्रँल्लिहमन्दिराग्रलसिते विद्युत्प्रभाशोभिते।
सिन्दूरारुणिते सुरम्यखचिते रक्तोत्पलाभोपलै-
र्ब्राह्मः काल उपागतः कपिपते जागृष्व नाथ प्रभो॥२॥

आपका यह मन्दिर सोने के अनेक कलशों से युक्त है। इसका शिखर पर्वत की चोटी को भी धिक्कार रहा है। यह बहुत ऊँचा है। यह गगनचुम्बी शिखरों से युक्त है और बिजली की छटा से शोभित है। यह सिन्दूर के समान लाल है और लाल कमल के समान आभा लिए हुए पत्थरों से, सुन्दरता के साथ जड़ा हुआ है। हे कपिपति, हे नाथ, ब्राह्म मुहूर्त आ गया है आप जागें।

पूर्वस्यां तपनागमं कलयितुं संसूच्यमाना वयः
वृक्षाग्रेषु गृणन्ति गाननिरता रात्रौ गतायां मुदा।
घण्टादुन्दुभिझल्लकैर्मुखरिते श्रीशोभने मण्डपे
निद्रां मुञ्च रघूत्तमप्रियसखे वज्राङ्ग नाथ प्रभो॥३॥

रात्रि के बीत जाने पर पूर्व दिशा में सूर्य के आगमन की सूचना देते हुए पक्षिगण वृक्षों की टहनियों पर गाते हुए स्तुतियाँ कर रहे हैं। घण्टा, नगाड़ा, झाल आदि की ध्वनि से गुंजित चकमक करते हुए मन्दिर में हे रघुवर के प्रियसखा, हे बजरंगबली, आप निद्रा का त्याग करें।

दैन्यं याति तमी तमोगुणवती नाथ प्रबुद्धे त्वयि
लङ्कादाहक मारुते कपिपते भीमेव रात्रिञ्चरी।
रक्षोभूतगणाः प्रयान्ति विदिशः श्रुत्वा तवागर्ज्जितं
निद्रां मुञ्च समुद्रलङ्घनपटो माङ्गल्यमूर्त्ते प्रभो॥४॥

भयंकर राक्षसी के समान तमोगुण से भरी हुई रात्रि आपके जागने पर दीन-हीन हो जाती है। हे लंका को जलानेवाले, मरुत् के पुत्र, कपिपति, आपका गर्जन सुनकर राक्षस एवं भूत प्रेत आदि दूर देश भाग जाते हैं। हे समुद्र को लाँघने में कुशल, मंगलमूर्ति, हे प्रभो, आप निद्रा का त्याग करें।

आनीतं सलिलं घटेषु सुभगं गङ्गादितीर्थाहृतं
कर्पूरागुरुचन्दनैः सुललितं स्निग्धं प्रभो शीतलम्।
पाद्यार्थं तव वीर राक्षसकुलोच्छेदप्रवीण प्रभो
ब्राह्मे काल उपागते सुसमये भीतेर्ज्जगत्तारय॥५॥

मैं सुन्दर कलशों में, गंगा आदि तीर्थों से लाया हुआ, कर्पूर, अगुरु, चन्दन से सुवासित, सुन्दर, स्निग्ध एवं शीतल जल आपके पैर धोने के लिए (पाद्य) लाया हूँ। हे वीर, राक्षसों के कुल का नाश करने में कुशल, हे प्रभो, इस ब्राह्म मूहूर्त के आने पर संसार को भयमुक्त करें।

अष्टाङ्गं तिलकुङ्कुमादिललितं चार्घ्यं समायोजितं
पात्रे ताम्रमये कुशाग्रसहितं हस्तौ कुरु क्षालनम्।
सन्नद्धे त्वयि सर्वशोकदलने रुद्रावतारे प्रभो
भीतिर्याति परां गतिं कपिपते जागृष्व नाथ प्रभो॥६॥

ताम्र के पात्र में तिल, कुंकुम आदि आठ पदार्थों से ललित, कुशाग्र के साथ अर्घ्य (हाथ धोने के लिए जल) का भी मैंने आयोजन किया है। आप हाथ धोवें। हे रुद्रावतार, हे प्रभो, आप सभी प्रकार के शोक का अन्त करनेवाले हैं और जब तैयार हो जाते हैं तो भय का नाश हो जाता है। हे कपिपति, आप जागें।

स्नानार्थं तुलसीदलेन सहितं सर्वौषधीभिर्युतं
कर्पूरेण सुवासितं च सलिलं श्रीखण्डपङ्कार्चितम्।
सीताशोकविनाशकारण महावीर प्रभो स्वीकुरु
नित्यं कर्म समाप्य साधकमणे शीघ्रं जगत्पालय॥७॥

हे महावीर, माता सीता का शोक दूर करनेवाले, हे प्रभो, स्नान के लिए सर्वौषधी एवं तुलसीदल से युक्त, कर्पूर से सुगन्धित, श्रीखण्ड चन्दन से महिमा-मण्डित जल स्वीकार करें और हे साधकशिरोमणि, अपना नित्य कर्म सम्पन्न कर शीघ्र जगत् का पालन करें।

श्रीमद्राघवपादपङ्कजयुगभृङ्ग स्वकीयं तनुः
बालार्कद्युतिशोभनं विलसितं सिन्दूरलिप्तं कुरु।
लालित्येन च तेन विद्रुममणिप्रख्येन कालाञ्जगत्
त्रायस्व प्रभुरामनामरटनासक्त प्रभो पाहि माम्॥८॥

श्रीमान् राघव के दोनों चरणकमलों पर लुब्ध भ्रमर, प्रातःकालीन सूर्य के समान शोभित और विलासपूर्ण अपने शरीर पर सिन्दूर का लेपन करें। मूँगा के समान ललित अपने शरीर की लालिमा से जगत् को कालिमा से रक्षित करें। प्रभु श्री राम के नाम को रटने में आसक्त, हे प्रभो, मेरी रक्षा करें।

❖

अब लौं नसानीं अब ना नसैहौं

भाग- ३

पं. सुरेश चन्द्र मिश्र

यह कथा गोस्वामी तुलसीदास के विषय मे हो या न हो, इससे यहाँ फर्क नहीं पड़ता। पार्थिव वस्तुओं के प्रति अनुराग एक नशा है, जिसके उतर जाने पर शान्ति मिल ही जाती है। तभी तो वह कह उठता है- अब लौं नसानीं अब ना नसैहौं।

मानव जीवन विचित्रताओं से भरा है। इसका हृदय-पक्ष इतना संवेदनशील है कि परिस्थितियों का एक हल्का-सा झोंका भी इसे कभी उदात्त बना देता है, तो कभी मर्मान्तक भीरु। कल-कल बहती नदियाँ, कभी नए जीवन के ताने-बाने बुन जाती हैं, तो कभी उसकी गर्जित बलवती धाराओं में स्वत: को विलीन कर व्यक्ति परम शान्ति पाने को संकल्पित भी हो उठता है।

भारत की सांस्कृतिक विरासत बड़ी विषाल है। यहाँ के ऋषि-मनीषी, कवि-कलाकार, साहित्यकार-दार्शनिक आदि की जीवन गाथाएँ कुछ ऐसी ही विचित्र घटनाओं के चमत्कार से भरी पड़ीं हैं, जो छोटी दिखती हुई भी बड़ी असरदार साबित हुई हैं। उनकी जीवन-नौका विविध तरंगों की थपेड़े खाती इस तीर के बजाय उस तीर पर जा लगी है, जहाँ आशातीत सफलताओं ने उनकी जीवन-दिशा बदल दी है। कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अपूर्व धैर्यवान् अस्ताचलगामी सूर्य ही नित्य उदयाचल की शोभा बन अपने ओजस्वी प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित-उद्भासित करने की क्षमता से सर्वथा युक्त हुआ करता है। इस संदर्भ में एक ऐसे संत-साहित्यकार की कथा या किंवदन्तियाँ हमें आकर्षित करतीं हैं, जो उनकी जीवन-संरचना को गहरा प्रभावित करती हैं। हाँ, यह कथा तुलसी की ही है और इनमें कितनी सत्यता है, इसका पूरा अंदाज़ा मुझे नहीं, किन्तु कथा इतनी चर्चित है कि कवियों ने इस पर कविताएँ भी लिख डाली है।

संत महाकवि तुलसीदासजी को कौन नहीं जानता? कहा जाता है कि संवत् 1583 ज्येष्ठ शुक्ल 13 (त्रयोदशी) गुरुवार को राजापुर निवासी दीनबंधु पाठक की पुत्री, भारद्वाज गोत्र की कन्या, 'रत्नावली' के साथ इनका विवाह हुआ। ऐसे तो इनकी ससुराल के गाँव के नाम में भी विद्वान् एकमत नहीं हैं,पर किसी-किसी का कहना है कि 'तारी' और 'सोरों' के बीच ही कहीं गोसाईंजी की ससुराल थी।'राजापुर माहात्म्य' में इनकी ससुराल की चर्चा इस प्रकार है-

राजापुर यमुना कगार पर कछार रह्यो,
उत्तर के पार सोहै रही ससुरार है।

इससे स्पष्ट होता है कि यमुना नदी के कगार पर इनकी ससुराल थी। पर रानी कमल कुँअरि ने गंगा के पार जाकर इनका ससुराल पहुँचना बताकर गंगा के आस-पास इनकी ससुराल का होना माना हैं। यहाँ इनकी ससुराल के गाँव के नाम की सफाई देना मेरा विषय नहीं, अपितु कुछ और है।

जैसा कि गोसाईंजी की पत्नी के नाम से सुविदित है, रत्नावली अपूर्व सुन्दरी थी और नव-वयस् तुलसीदासजी का युवा मन वासनाओं की उछाल पर था। बरसात का समय था। घटा घिरी थी। अंधेरी रात थी। नदियाँ उफान पर थीं। ऐसे मनमोहक समय में तुलसीदास का मन चंचल हो उठा। सच है- -

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्न्यथावृत्ति चेत:
कण्ठाष्लेशप्रणयिनिजने किम्पुर्दूरसंस्थे।
(कालिदास)

वस्तुत:, काली घटा सुखी व्यक्ति के चित्त को भी उद्विग्न कर देती है, फिर वियोगी (जिसकी प्रेयसी दूर हो) का कहना ही क्या? गोसाई जी के विषय में कहा जाता है कि वे भी भले-बुरे का ख्याल न कर, हहराती नदी को पार कर, घुप्प अंधेरी रात में ही ससुराल पहुँच गये। नवोढा पत्नी 'रत्नावली'

उन्हें देख विस्मित हो गई। वह अधिक लज्जालु थी और सामाजिक लोक निन्दा की अतिशय भीरु भी। उन्हें धिक्कारते हुए पत्नी ने यहाँ तक कह डाला कि हे नाथ, ''मेरे इस हाड़-मांस के शरीर में जितनी तुम्हारी आसक्ति है, उससे आधी भी यदि भगवान् में होती तो तुम्हारा बेड़ा पार हो गया होता।'' श्रीसीतारामशरण, भगवान् प्रसाद ने 'भक्तमाल' की टीका में इस स्थल पर एक दोहा लिखा है-

लाज न लागत आप को, दौड़े आयहुँ साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ मैं नाथ।।
अस्थि-चर्ममय देह मम, ता में जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौं भयभीत।।''

गोसाईंजी के ससुराल जाने के संबंध में ये भी किंवदंतियाँ हैं कि उन्होंने मुर्दे पर चढ़कर रास्ते की नदी पार की थी और साँप को रस्सी समझकर उसी के सहारे पत्नी के प्रकोष्ठ में प्रवेश किया था। खैर, लोक प्रचलित कहानियाँ जो भी हों, इनसे इतनी बात निकलकर स्पष्ट सामने आती कि तुलसीदासजी का युवा मन बड़ा ही कामासक्त था, प्रेम-पिपासु था, वासनाजन्य कमजोरियों का कोमल षिकार था। पर, अचानक प्राणाधिक प्रिय पत्नी के कठोर धिक्कार से उनकी जीवन-दिशा का बदल जाना, सचमुच बड़ी ही गंभीर बात है। देखिए किसी कवि के शब्दों में इस स्थल का हृदयस्पर्शी वर्णन-

भयंकर रात थी तुलसी,
विकट बरसात की-
मगर माने न तुम थे।
क्या समय था? क्या उमस थी?
ज़िंदगी की क्या हुलस थी?
प्रेम पथ के धीर पंथी।
बढ़ रहे अविराम पथ पर उत्तरोत्तर जो-
जलाये प्रेम की शतवर्तिका वक्षस् गुहा में।
प्रबल झंझा में विटप-व्याघातिनी में-
दामिनी में, दीर्घिका उन्मादिनी में।
सामने शव थी-
कि पहचाने न तुम थे।
भयंकर रात थी तुलसी,
विकट बरसात की,
मगर माने न तुम थें।
और भी क्या?
सह न सकता था,
कोई,
वह हृदय अंतर् मथन,
उत्तप्त, कामासक्त पल-पल प्रेम-पीड़ित,
विसुरित उव्छ्वास प्रति उच्छ्वास की-
आकुल कथा।
अन्तर व्यथा।
पारकर नदी को-
पधाारे कामिनी-गृह।
सामने था सर्प-
पर, जाने न तुम थे।
भयंकर रात थी तुलसी विकट बरसात की-
मगर, माने न तुम थे।
जगाये भामिनी,
हृत्ताप की उधर्वक धधक को शान्त करने।
ललक लपटे।
तनिक झपटे।
कृपणता ली ढिठाई।
न वापस बात आई।
सुनी फटकार तुलसी,
प्रणय झटकार तुलसी,
मिटी तम-तोम की तत्काल बदली।
उशा, मुस्का उठी नभ में अकेली।
बही पावन हवा मकरंद मंडित।
पथिक के हो गये सब राग खंडित।
चरण-तल-रज लगी कुछ-कुछ खिसकने,
जगा कवि मूर्छना से जग जगाने।''
मुड़े युग-अंघ्रि सत्वर-
सामने थी दयित,
पर दीवाने न तुम थे।
भयंकर रात थी तुलसी,
विकट बरसात की-

मगर माने न तुम थे।

लोगों की मान्यता है कि तब से तुलसी के जीवन की नई शुरुआत हो गई। तुलसी की भौहें तनीं, पर क्रोध से नहीं, बल्कि जीवन की उथल-पुथल को शान्त करने के लिए, अपनी भूलों को स्वीकार कर नए जीवन-पथ की खोज के लिए। राह मिली। गृहस्थ जीवन का परित्याग कर सन्यास को ग्रहण किया। साधु-संतों की संगति में मन रमने लगा, प्रभु श्रीराम के चरणों में आसक्ति बढ़ी, सरस्वती का वरदान मिला और एक-से-एक अमूल्य ग्रंथों का शुभ प्रणयन आरंभ हो गया।

गोस्वामीजी ने कितने ग्रंथों का प्रणयन किया, इसके संबंधा में विद्वान् एकमत नहीं हैं। पर, निर्विवाद 12 ग्रंथ तो इनके नाम हैं ही। इनमे रामायण, कवितावली, गीतावली, दोहावली, विनयपत्रिका तथा रामाज्ञा ये छह बड़े ग्रंथ हैं तथा रामललानहछू, वैराग्य-संदीपिनी, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, कृश्ण गीतावली और बरबै रामायण ये छह छोटे ग्रंथ हैं।

सचमुच दृढ़ संकल्प मानव-जीवन की वह षक्ति है, जो काँटों में भी राह बना सकता है, वज्र को भी दहला सकता है और सफलता के शिखर पर चढ़ विश्व को आलोकित कर सकता है।

लेखकों से निवेदन

2015 ई. से धर्मायण को अपने नये रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है। अगले अंक से शोधपरक आलेख के साथ पाठकों द्वारा मिले सुझावों के अनुरूप कुछ स्थायी-स्तम्भ भी प्रकाशित किये जायेंगे। इन स्थायी-स्तम्भों का स्वरूप इस प्रकार है:

1. **नमसा विधेम**- संस्कृत के श्लोकों में देवस्तुति, हिन्दी अनुवाद सहित, अप्रकाशित 2. **देवस्तुति**- हिन्दी में छन्दोबद्ध प्राचीन अथवा आधुनिक भक्तिपरक कविताएँ। 3. **शोधपरक आलेख** 4. **प्रेरक-पुरुष**। सन्तों, महापुरुषों की जीवनी। 5. **प्रेरक-प्रसंग** 6. **अलौकिक अनुभूति** 7. **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**। आयुर्वेद से घरेलू नुस्खे 8. **ज्योतिष-चर्चा** 9. **आस्था के केन्द्र** 10. **संस्कृत भाषा-परिचय** 11. **धार्मिक शंका-समाधान** 12. **धार्मिक पुस्तक समीक्षा** 13. **धरोहर** 14. **पाठकीय प्रतिक्रिया** 15. **तीर्थयात्रा-वृत्तान्त।**

अत: सुधी लेखकों से निवेदन है कि उक्त स्तम्भों के लिए अपने मौलिक तथा अप्रकाशित अप्रसारित आलेख हमें प्रेषित करें। रचनाओं की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। आपकी रचनाओं में राजनीति की कोई बात नहीं होनी चाहिए। सामाजिक सद्भाव, धार्मिक उदारता, भारतीय गरिमामयी संस्कृति आदि की झलक हमारी पत्रिका की पहचान है। टंकित या हस्तलिखित रचनाएँ स्वीकार्य हैं। टंकित आलेख mahavirmandir@gmail.com पर भेज सकते हैं। लेखक अपना फोटो एवं साहित्यिक परिचय अवश्य भेजें। यदि आलेख में कोई फोटो डाला गया हो तो उसका .jpg फाइल ईमेल से अवश्य भेजें। रचनाओं के लिए मन्दिर की ओर से सम्मानकी की व्यवस्था है। अपना पत्राचार पता अवश्य लिखें।

इनके अतिरिक्त 'धर्मायण' के पाठक नियमित रूप से **महावीर मन्दिर समाचार परिक्रमा** से भी अवगत होते रहेंगे।

पाण्डवगीता

(पाण्डवों एवं कौरवों द्वारा की गयी कृष्ण-स्तुति)

(प्राचीन पाण्डुलिपियों के आधार पर पाठ-भेद तथा हिन्दी अनुवाद के साथ)

सम्पादक- (डॉ०) पं० श्री शशिनाथ झा

वि. वि. प्राचार्य, व्याकरण विभाग,

का. सिं. द. संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा

पाण्डवगीता भक्ति की परम्परा में अत्यन्त प्रसिद्ध स्तोत्र है। इसमें महाभारत के अनेक प्रमुख पात्रों ने अत्यन्त भक्ति-भाव से भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की है, जिनमें दुर्योधन सहित कौरवगण भी हैं। इसका एक पाठ गीताप्रेस से प्रकाशित है, किन्तु इसमें श्लोकों की संख्या कम है। दरभंगा से प्राप्त प्राचीन पाण्डुलिपियों में अनेक स्थलों पर अधिक श्लोक हैं, अतः इसके पुनः संपादक की आवश्यकता हुई। जिन दिनों आचार्य किशोर कुणाल कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति थे, उन्हीं दिनों उनके आग्रह पर संस्कृत के मूर्द्धन्य विद्वान् एवं पाण्डुलिपि शास्त्र के गहन वेत्ता पं. शशिनाथ झा ने पाण्डव-गीता का सम्पादन ०१. ०४. २००३ ई. में किया था। जिसका प्रकाशन महावीर मन्दिर प्रकाशन से होना था। तत्काल यह 'धर्मायण' के पाठकों के लिए प्रकाशित किया जा रहा है।

अध्यात्म-चिन्तन एवं चित्तशान्ति के लिए गीताशास्त्र का नित्य अध्ययन-मनन आर्यधर्म का प्रधान अङ्ग है। एक ऐसा विराट् पुरुष जो सर्वनियन्ता है, उसके निर्देशन में ही सभी स्थावर-जंगम पदार्थ गतिशील हैं। स्वभावतः, हम भी उसीके निर्देशन में चल रहें हैं, परन्तु ज्ञानरूप से चलने पर दिशाहीन होने का भय नहीं रहता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को उस नियन्ता के सतत निर्देशन का ध्यान रखते हुए कार्य करना चाहिए। जैसे कोई मजदूर अपने नियोक्ता की उपस्थिति में पूर्णतः सावधान होकर तत्परता से काम करता है, पर उसके परोक्ष में कुछ शिथिल हो जाता है। उसी तरह पशु, पक्षी और मानव तक का भी यही स्वभाव है। हम अपने नियोक्ता ईश्वर से ओझल कभी भी नहीं हो सकते हैं- यही ज्ञान गीता के द्वारा प्राप्त होता है, ऐसा ज्ञान होने पर हम कदापि कर्त्तव्यच्युत नहीं हो सकते हैं। उस परमात्मा को हृदय में विद्यमान होने की भावना बढ़ाते-बढ़ाते मनुष्य उसमें एकाकार हो सकता है।

प्रत्येक शास्त्र की परम्परा होती है। पुराण १८, उपपुराण १८, उपनिषद् १०८, स्मृति ५२ इत्यादि संख्यायें उस शास्त्र की परम्परा ही तो हैं। गीता की भी परम्परा है। श्रीकृष्ण के द्वारा कही हुई गीता श्रीमद्भगवद्गीता सर्वप्रसिद्ध है। उसी परम्परा में- विष्णुगीता, रामगीता (अध्यात्मरामायण उत्तरकाण्ड), कपिलगीता (श्रीमद्भागवत तृतीयस्कन्ध), देवीगीता (देवीभागवत सप्तमस्कन्ध), शक्तिगीता, अष्टावक्रगीता (२१ प्रकरण, जनक के प्रति कथित), संन्यासगीता (१२ अध्याय), अवधूतगीता, ईश्वरगीता, उत्तरगीता, गणेशगीता, शम्भुगीता, गोपगीता, गुरुगीता, श्रीधीशगीता, सप्तशतीगीता, पञ्चरत्नगीता (नेपाल), कोमलगीता, हरिगीता, चतुर्विंशगीता, वामदेवगीता (महाभारत शन्तिपर्व), हंसगीता (महाभारत शन्तिपर्व मोक्ष०), प्रपन्नगीता (पाण्डवगीता) इत्यादि प्रसिद्ध हैं आधुनिक युग में भी इस परम्परा का अनुवर्तन हुआ है- रामकृष्णगीता और गाँधीगीता। वेद का अंन्तिम अंश उपनिषद् कहलाता है और उसी के सिद्धान्त को सरल ढंग से बताने के कारण गीता को भी उपनिषद् कहते हैं। चूँकि, उपनिषद् शब्द स्त्रीलिंग है, अतः गीता शब्द भी स्त्रीलिंग ही है।

प्रस्तुत पाण्डवगीता भगवद्भक्ति के अनेक रूपों की झाँकी प्रस्तुत करती है। पाण्डवों के द्वारा आयोजित यज्ञ के अवसर पर देवों, ऋषियों, महापुरुषों एवं पाण्डवों के सम्बनिधियों ने भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अपना हृदयगत भावों को प्रकट किया था, जिसमें ७२ व्यक्तियों ने भाग लिया। इनमें अधिक व्यक्तियों ने शरणापन्न होने की बात कही है। इसलिये इसका नाम **प्रपन्नगीता** है और पाण्डवों के द्वारा आयोजित होने के कारण इसे **पाण्डवगीता** नाम मिला। इन देवों, ऋषियों एवं महापुरुषों की सूची पुस्तक के अन्त में दे दी गयी है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव एवं प्रवृत्ति के अनुसार श्रीकृष्ण की स्तुति करते देखे जाते हैं। यथा -

(१) **कीर्त्तन**- पाण्डु, लोमहर्षण, सहदेव, धृतराष्ट्र, सात्यकि, अभिमन्यु आदि।
(२) **स्मरण**- ब्रह्मा, इन्द्र, भीष्म
(३) **अनन्या भक्ति**- कुन्ती, माद्री, गान्धारी, उद्धव, द्रौपदी, नकुल
(४) **दास्य**- अक्रूर, विदुर, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण
(५) **नमन**- धृतराष्ट्र, द्रुपद, सुभद्रा,
(६) **रूपध्यान**- युधिष्ठिर, भीम
(७) **शरणापन्न**- अर्जुन, जयद्रथ, धौम्य आदि

कुटिल व्यक्ति के हृदय में भी भक्ति रहती है, पर कुटिलता लिये हुए, इसका निरूपण दुर्योधन की उक्ति में किया गया है -

जानामि धर्म, न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्म, न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।(श्लोक-३१)

अर्थात्, मैं धर्म को जानता हूँ पर, उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती है और अधर्म (पाप) को भी मैं जानता हूँ पर, उससे मेरी निवृत्ति (हट जाना) नहीं होती है क्योंकि मेरे हृदय में बैठा हुआ कोई देव मुझे जैसे प्रेरित करता है, मैं वैसा ही करता हूँ। अर्थात्, जब भगवत्प्रेरणा के बिना कुछ हो ही नहीं सकता है तो पापी मनुष्य का दोष भगवान् के मत्थे ही जाता है। एक तरफ सर्वनियन्ता कहकर वह भगवान् की स्तुति करता है तो दूसरी तरफ सारे दुष्कर्मो का प्रेरक कह कर उन्हें लाञ्छित भी करता है। वस्तुतः ईश्वर मनुष्य को कार्यभार देते हैं, उसके करने की शक्ति देते हैं और सदसद्विवेकिनी बुद्धि भी देते हैं; फलतः उस शक्ति का, उस बुद्धि का सदुपयोग या दुरुपयोग करना मनुष्य के हाथ में है

इस पाण्डवगीता में बहुत-सी ऐसी उक्तियाँ हैं जो भारतीय समाज में अत्यन्त प्रचलित हैं -

(१) नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः।३८।।
(२) त्वमेव माता च पिता त्वमेव .....।३०।
(३) अत्रैव गङ्गा यमुना त्रिवेणी .....।४४।
(४) लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः।५३।
(५) हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।६३।
(६) यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनञ्जयः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।६२।(श्रीमद्भगवद्गीता)

(७) अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽनिशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा प्रसीद जगदीश्वर।६३।

(८) शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरि:।८३।

पाण्डवगीता के आरम्भिक ३ पद्यों को प्रात:स्मरण में पाठ किया जाता है। इस प्रकार यह गीता दैनन्दिन व्यवहार से लेकर अध्यात्मचिन्तन तक के उपयोग में लायी जा रही है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन 'बृहत्स्तोत्ररत्नाकर' के अन्तर्गत **प्रपन्नगीता** के नाम से हुआ था और उसी के आधार पर अन्य संस्करण हिन्दी अनुवाद सहित हुए।

संयोग की बात है, कामेश्वर सिंह दरग संस्कृत विश्वविद्यालय के हस्तलिखित ग्रन्थों के अवलोकन के क्रम में माननीय कुलपति **आचार्य किशोर कुणालजी** की दृष्टि पाण्डवगीता की पाण्डुलिपि पर पड़ी और उन्होंने इसकी दुर्योधनोक्ति- ''जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति:" पद्य पढ़ते हुए इसको उस पाण्डुलिपि में ढूँढ़ने को मुझे कहा। पाण्डुलिपि मिथिलाक्षर में है। मैंने उन्हें वह पद्य दिखाया और अन्य पद्यों को भी पढ़कर सुनाया। उन्होंने इसके सम्पादन का भार मुझे सौंप दिया। हस्तलेख में बहुत-सी त्रुटियाँ थीं और मुद्रित पुस्तक में भी त्रुटियाँ परिलक्षित हुईं। पर, कुछ ही दिनों में इसकी एक अन्य पाण्डुलिपि भी मिल गयी। इन्हीं **तीनों पुस्तकों के आधार पर प्रस्तुत संस्करण** तैयार हुआ है:-

क्रम संख्या	**ग्रन्थ**	**संकेत**
१.	**पाण्डवगीता**- मिथिलाक्षर कुल पत्र-४, कुल श्लोक- ७५ का० सिं० द० संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा	**क**
२.	**पाण्डवगीता**- देवनागरी पत्र- ९, कुल श्लोक- ९४ मिथिला संस्कृतशोध संस्थान, दरभंगा	**ख**
३.	**पाण्डवगीता** एवं हंसगीता मुद्रित संवत्- २०५७ गीताप्रेस, गोरखपुर, कुल श्लोक-८३, हिन्दी अनुवाद सहित पृ०- ४३ पॉकेट साईज	**ग**

प्रस्तुत पाण्डवगीता को उपर्युक्त तीनों पुस्तकों के आधार पर स्वयं समीक्षा कर हिन्दी अनुवाद सहित पाठकों के हाथ समर्पित कर रहा हूँ। इस कार्य हेतु इसके मूल **प्रेरक** कुलपति **आचार्य किशोर कुणालजी** के प्रति परम कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझसे यह कार्य सम्पादित करा लिया और बार-बार परामर्श देते रहे।

मिथिला संस्कृत शोधसंस्थान, दरभंगा के निदेशक एवं मातृकाविभागीय अधिकारियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। गीताप्रेस, गोरखपुर की पाण्डवगीता के अनुवादक के प्रति भी आभारी हूँ।

अन्त में विद्वज्जनों से अपनी त्रुटि हेतु क्षमाप्रार्थी होते हुए आशा करता हूँ कि भक्त एवं जिज्ञासु इससे लाभ उठायेंगे।

पाण्डवगीता

[1]पाण्डुरुवाच -

प्रह्लाद-नारद-पराशर-पुण्डरीक-व्यासाम्बरीष-शुक-शौनक-भीष्म-दाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुन-वसिष्ठ-विभीषणादीन् पुण्यानिमान् परमभागवतान् नमामि॥१॥

पाण्डु बोले -

प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुकदेव, शौनक, भीष्म, दाल्भ्य, रुक्मांगद, अर्जुन, वसिष्ठ, विभीषण इत्यादि पुण्यात्माओं एवं उत्कृष्ट भगवद्भक्तों को प्रणाम करता हूँ।**॥१॥**

[2]लोमहर्षण उवाच -

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्त्तनेन पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्त्तनेन।
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्त्तनेन माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः॥२॥

लोमहर्षण बोले -

युधिष्ठिर का नाम लेने से धर्म बढता है, भीम का नाम लेने से पाप नष्ट होता है, अर्जुन का नाम लेने से शत्रु नष्ट होता है और माद्रीपुत्र नकुल एवं सहदेव का नाम लेने से रोग नहीं होते हैं।।2।।

ब्रह्मोवाच -

ये मानवा विगत-राग-परापरज्ञा नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति।
ध्यानेन तेन हतकिल्विषचेतनास्ते मातुः पयोधररसं न पुनः पिबन्ति॥३॥

ब्रह्मा बोले -

जो मनुष्य सांसारिक विषयों (धन आदि) में अनुराग को हटाकर एवं पर (परम तत्त्व) और अपर (साधारण तत्त्व) के भेद को जानकर देवताओं में श्रेष्ठ नारायण का सतत स्मरण करते हैं वे उस ध्यान से बुद्धिगत सभी पापों के नष्ट हो जाने के कारण फिर कभी भी माता का दूध नहीं पीते हैं। अर्थात्, साक्षात् मुक्ति मिल जाने से उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।।3।।

इन्द्र उवाच -

नारायणो नाम नरो नराणां प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जित-पापसंघं[3] हरत्यशेषं स्मृतमात्र एषः[4]॥4॥

---

1. पाण्डव - ख, ग। 2. लोमश - क।
3. सञ्चयं - क, ख, ग।,
4. एव यः - क, ग।,

इन्द्र बोले -

नारायण नाम का मनुष्यदेहधारी (श्रीकृष्ण) इस पृथ्वी पर लोगों के बीच प्रसिद्ध चोर (माता के मक्खन एवं गोपियों के वस्त्र चुरानेवाला) कहा गया है, जो स्मरण करने से ही लोगों के अनेक जन्मों के अर्जित समस्त पापों को चुरा लेता है।

[5]युधिष्ठिर उवाच -

मेघश्यामं पीतकौशेयवस्त्रं श्रीवत्साङ्क्यं कौस्तुभोद्भासिताङ्गम्।
पुण्योपेतं पुण्डरीकायताक्षं विष्णुं वन्दे सर्वलोकैकनाथम्।।५।।

युधिष्ठिर बोले -

सभी लोकों के एकमात्र प्रभु विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेघ के समान श्यामल, पीले रेशमी वस्त्र पहने हुए, श्रीवत्स चिह्नवाले, कौस्तुभ मणि से चमचमाते देहवाले, पुण्य से युक्त और उजले कमल के समान विस्तृत आँखोंवाले हैं।। ५।।

भीमसेन उवाच -

जलौघमग्ना सचराचरा धरा विषाणकोट्याखिलविश्वमूर्तिना
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयंम्भूर्भगवान् प्रसीदतु।।६।।

भीमसेन बोले -

अनन्त जलराशि में डूबी हुई इस चल और अचल सभी वस्तुओं से युक्त पृथ्वी को, अखिल संसार के आकार वाले जिस वराहरूपधारी विष्णु भगवान् ने अपने नुकीले दाँतों के अग्रभाग से ऊपर उठा लिया था, वे स्वयम् उत्पन्न होनेवाले भगवान्, मेरे ऊपर प्रसन्न होवें।। 6।।

अर्जुन उवाच -

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमव्ययं प्रभुं विभुं भासित-भूतभावनम्[6]।
त्रैलोक्यविस्तारविचारकारकं हरिं प्रपन्नोऽस्मि गतिं महात्मनाम्।।७।।

अर्जुन बोले -

मैं उस हरि का शरणापन्न हूँ, जो महात्माओं की गति (गन्तव्य लक्ष्य, आश्रय), अचिन्त्य (मानवबुद्धि के अगम्य), अव्यक्त, अनन्त, अव्यय, प्रभु (सभी सामर्थ्य से युक्त), व्यापक, प्रभावान्, सभी प्रणियों के व्यवस्थापक एवं तीनों लोकों के विस्तार हेतु चिन्तन करनेवाले हैं।। 7।।

नकुल उवाच-

यदि गमनमधस्तात् [7]कर्मपाशानुबन्धाद् यदि च कुलविहीने [8]जन्म मे पक्षिकीटे।
कृमिशतमपि गत्वा [9]जायते चान्तरात्मा भवतु मम हृदिस्था केशवे भक्तिरेका।।८।।

नकुल बोले -

यदि पूर्व में किये गये कर्म के अनुरोध से अगले जन्म में मेरा गमन नीचे की ओर हो जाय, अकुलीन परिवार में या पक्षी के रूप में या कीड़े के रूप में जन्म हो जाय अथवा सैकड़ों जन्मों तक कीड़ा होता चला जाऊँ, फिर भी मेरे हृदय में एक मात्र केशव की ही भक्ति बनी रहे।।8।।

---

5. धर्म - क। 6. नाथम् - क।, 7. काल - ख, ग।, 8. जायते - ग,
9. तद्गताभ्यन्तरात्मा - क।

सहदेव उवाच-

तस्य यज्ञवराहस्य विष्णोरतुलतेजसः।
प्रणामं ये [10]प्रकुर्वन्ति तेषामपि नमोनमः॥९॥

सहदेव बोले -

उस अतुलनीय तेजस्वी यज्ञपुरुष वराह अवतार वाले विष्णु को जो प्रणाम करते हैं, उन्हें भी मेरा बार-बार नमस्कार है।।9।।

कुन्त्युवाच-

स्वकर्मफलनिर्दिष्टां यां यां योनिं व्रजाम्यहम्।
तस्यां तस्यां हृषीकेश! त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे॥10।।

कुन्ती बोलीं -

अपने कर्म के द्वारा निर्दिष्ट जिस-जिस आकृति में जन्म लेती जाऊँ, हे हृषीकेश (इन्द्रियों के ईश कृष्ण)! उस-उस जन्म में तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति परिपुष्ट बनी रहे। (अनन्या भक्ति)।।10।।

माद्र्युवाच -

कृष्णे रताः कृष्णमनुस्मरन्ति रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये।
ते भिन्नदेहाः प्रविशन्ति कृष्णे हविर्यथा मन्त्रहुतं हुताशे।।11।।

माद्री बोलीं -

जो व्यक्ति कृष्ण में अनुरक्त होकर उनका स्मरण करते हैं, रात में सोने के समय तक एवं फिर सुबह उठते ही उनका ध्यान करते हैं, वे अपने देहपात होने पर कृष्ण में प्रविष्ट हो जाते हैं जैसे मन्त्र पढ़कर हवन किया हुआ हवि (आहुति) अग्नि में प्रविष्ट हो जाता है(अग्नि देवता में लीन हो जाता है)।।11।।

द्रौपद्युवाच -

कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु रक्षःपिशाच-मनुजेष्वपि यत्र तत्र।
जातस्य मे भवतु केशव! त्वत्प्रसादात् त्वय्येव भक्तिरचलाऽव्यभिचारिणी च॥१२॥

द्रौपदी बोलीं -

कीट, पक्षी, पशु, सर्प, राक्षस, पिशाच और मानव में जहाँ कहीं भी (आगे) मेरा जन्म हो, हे केशव! आपकी कृपा से वहाँ आप ही में मेरी निश्चल भक्ति बनी रहे, जो कभी भी अन्यत्र न जाये।।12।।

[11]हे कृष्ण द्वारकावासिन्! क्वासि यादवनन्दन!
इमामवस्थां सम्प्राप्ताम् अनाथां मामुपेक्षसे॥१३॥

हे कृष्ण! द्वारकावासिन्! यादवनन्दन (यदुवंशदीपक)! कहाँ हो? इस (संकटमय) अवस्था में पड़ी हुई मुझ अनाथा की क्यों उपेक्षा करते हो?।।13।।

शंखचक्रगदापाणे! द्वारकानिलयादव।

10. ये न कुर्वन्ति - ख।
11. दो पद्य (क्रमांक 13 एवं 14) केवल 'ख' पुस्तक में हैं ।

गोविन्द! पुण्डरीकाक्ष! रक्ष मां शरणागताम्॥१४॥

शंख, चक्र, गदा (और कमल) को हाथ में रखनेवाले! हे गोविन्द! हे पुण्डरीकाक्ष! द्वारकास्थित अपने घर से ही मेरी रक्षा करें (क्योंकि तुम सर्वसमर्थ हो) और शरण में आई हुई मेरी रक्षा करो (आर्त्त की पुकार)।।14।।

सुभद्रोवाच -

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥१५॥

सुभद्रा बोलीं -

एक बार भी कृष्ण को किया हुआ प्रणाम दश अश्वमेध यज्ञ के समान होता है। दश अश्वमेध यज्ञ करने वाला पुनर्जन्म लेता है, पर कृष्ण को प्रणाम करनेवाला पुनर्जन्म नहीं लेता है।।15।।

अभिमन्युरुवाच -

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण!
गोविन्द गोविन्द रथाग्पाणे गोविन्द गोविन्द न मां त्यजेथाः[12]॥१६॥

अभिमन्यु बोले -

गोविन्द! गोविन्द! हरे! मुरारे! गोविन्द! गोविन्द! मुकुन्द! कृष्ण! गोविन्द! गोविन्द! चक्रपाणे! गोविन्द! गोविन्द! आप मुझे मत छोड़ें। (नामकीर्त्तन)।।16।।

[13]धृष्टद्युम्न उवाच -

श्रीराम नारायण वासुदेव! गोविन्द वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण!
श्रीकेशवानन्त नृसिंह विष्णो! मां त्राहि संसारभुजङ्गदष्टम्॥१७॥

धृष्टद्युम्न बोले -

श्रीराम! नारायण! वासुदेव! गोविन्द! वैकुण्ठ! मुकुन्द! श्रीकृष्ण! श्रीकेशव! अनन्त! नरसिंह! विष्णो! संसार रूपी सर्प से डँसे हुए मुझ को बचाओ । (आर्त भक्त की पुकार नामकीर्त्तन के साथ)।। 16।।

[14]सात्यकिरुवाच -

अप्रमेय हरे विष्णो! कृष्ण दामोदराच्युत!
गोविन्दानन्त सर्वेश! वासुदेव! नमोऽस्तु ते॥१८॥

सात्यकि बोले -

हे अपरिमित हरे! विष्णो! कृष्ण! दामोदर! अच्युत! गोविन्द! अनन्त! सर्वेश! वासुदेव! आपको मेरा नमस्कार अर्पित हो॥ **१८** ॥

उद्धव उवाच -

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते।

---

12. नमोनमस्ते - ग ।
13. प्रद्युम्न - क।
14. सात्यकी उवाच - ख । 15. अप्रमेयो हृषीकेश - ख।
16. वाञ्छति दुर्भगः - ग।

तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः[१६]॥१९॥

उद्धव बोले -

वासुदेव को छोड़कर जो व्यक्ति किसी अन्य देवता की उपासना करता है, वह दुर्मति गंगा के किनारे प्यास बुझाने के लिए कुआँ खनता है। (अनन्यभाव भक्ति) **॥ १९ ॥**

धौम्य उवाच -

अपां समीपे शयनासनस्थिते[१७]
दिवा च रात्रौ च पथा च गच्छता।[१८]
[१९]यदस्ति किञ्चित् सुकृतं कृतं मया
जनार्दनस्तेन कृतेन तुष्यतु॥२०॥

धौम्य बोले -

जल के समीप में, शयन काल में, आसन पर, दिन में, रात में और राह में चलते हुए मैंने जो कुछ पुण्य किया है, उससे जनार्दन सन्तुष्ट होवें (क्योंकि वे पुण्यकर्म से ही प्रसन्न होते हैं)। (समर्पण भाव) ।।20।।

सञ्जय उवाच -

आर्त्ता विखिन्ना विषयाभिभूता[२०] घोरेषु च व्याधिषु पच्यमानाः[२१]।
संकीर्त्त्य नारायणशब्दमात्रं विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति॥२१॥

सञ्जय बोले -

व्याकुल, खेद में पड़े हुए, कामादिविषयों से ग्रस्त और घोर व्याधियों में फँसे हुए व्यक्ति केवल 'नारायण' शब्द का उच्चारण कर दुःख से छुटकारा पाकर सुखी हो जाते हैं।।21।।

अक्रूर उवाच -

[२२]अहं हि नारायणदास-दास-दासस्य दासस्य च दासदासः।
[२३]अन्यो न ईशो जगतो नराणां तस्मादहं धन्यतरोऽस्मि लोके॥२२॥

अक्रूर बोले -

मैं तो नारायण के दास के जो दास, उसका जो दास, उसके दास का दास हूँ। संसार के मनुष्यों का नारायण के सिवा कोई दूसरा ईश नहीं है। उनसे सम्बन्ध पाकर इस लोक में मैं अधिक भाग्यवान् हूँ। दास्य भक्ति।।22।।

विदुर उवाच -

वासुदेवस्य ये भक्ताः शान्तास्तद्गतमानसाः।[२४]

'ख' पुस्तकेऽत्र एकोऽधिकः श्लोकः -
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं कुलम् ।
अद्य मे सफलो देहस्त्वद्य मे सफला क्रिया ।।

17. शयनासनस्थे - क। शयनाशने गृहे - ख।
18. पुनरुत्थिताय - ख। यथाधिगच्छताम् - ग। 19. यद्यस्ति - ग।
20. विषण्णा शिथिलाश्च भीताः - ख, ग। 21. व्याघ्रादिषु वर्तमानाः - ग। ,
22. अहमस्मि -क, ख, ग। 23. अन्येभ्य ईशो विगतो - क। अनन्य ईशो - ख।
24. चेतसः -ग। , 25. भवे जन्मनि जन्मनि - क, ख।

तेषां दासस्य दासोऽहं भवेयं जन्म-जन्मनि[25]॥२३॥

विदुर बोले -

वासुदेव के जो भक्त शान्त होकर उनमें मनको लगाये हुए हैं, जन्म-जन्मान्तर में मैं उन भक्तों के दास का दास होता रहूँ ॥ २३ ॥

भीष्म उवाच -

विपरीतेषु कालेषु विपरीतेषु[26] बन्धुषु।
त्राहि मां कृपया विष्णो[27]! शरणागतवत्सल!॥२४॥

भीष्म बोले -

समय विपरीत होने पर, बन्धुओं के विपरीत (या क्षीण) होने पर, आज हे विष्णो! कृपया आप मेरा उद्धार करें, क्योंकि आप शरणागत भक्त पर बहुत स्नेह करते हैं।।24।।

द्रोणाचार्य उवाच -

ये ये हस्ताश्चक्रधरेण दैत्यास्-त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन।
ते ते गतास्तन्निलयं नरेन्द्राः[28] क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः॥२५॥

द्रोणाचार्य बोले -

जो जो दैत्य, चक्रधारी त्रिभुवननाथ जनार्दन के द्वारा मारे गये, वे वे राजा लोग विष्णुलोक सिधार गये। इस प्रकार भगवान् का क्रोध भी वरदान के समान होता है।।25।।

कृपाचार्य उवाच -

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे! मत्प्रार्थनीय-मदनुग्रह एष एव।
त्वद्भृत्य-भृत्य-परिचारक-भृत्य-भृत्य-भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ!॥२६॥

कृपाचार्य बोले -

हे मधु और कैटभ के शत्रु! मेरे जन्म लेने की सार्थकता इसी में है और मेरा प्रार्थनीय तथा मुझ पर आपकी कृपा यही है कि हे लोकनाथ ! आपके सेवक के सेवक का जो परिचारक (सेवक), उसके सेवक के सेवक के सेवक का मैं भृत्य (दास) हूँ- इस रूप में आप मेरा स्मरण करें।।26।।

अश्वत्थामोवाच -

गोविन्द केशव जनार्दन वासुदेव! विश्वेश विश्व मधुसूदन विश्वरूप!
श्रीपद्मनाभ पुरुषोत्तम! देहि दास्यं [29]नारायणाच्युत नृसिंह! नमो नमस्ते॥२६॥

अश्वत्थामा बोले -

हे गोविन्द! केशव! जनार्दन! वासुदेव! विश्वेश! विश्व! मधुसूदन! विश्वरूप! श्रीपद्मनाभ! पुरुषोत्तम! आप मुझे अपना दास बना लें । हे नारायण ! अच्युत! नरसिंह! आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।।26।।

कर्ण उवाच-

नान्यं वदामि न शृणोमि न चिन्तयामि नान्यं स्मरामि न भजामि न चाश्रयामि।

---

26. परिक्षीणेषु - ग। , 27. कृष्ण - ख, ग।

28. गता विष्णुपुरीं नरेन्द्र - ख, ग ।

29. पुष्कराक्ष - क, ख ।

भक्त्या त्वदीयचरणाम्बुजमन्तरेण श्रीश्रीनिवास पुरुषोत्तम! देहि दास्यम्।।28।।

कर्ण बोले -

हे श्रीश्रीनिवास! पुरुषोत्तम! भक्तिपूर्वक आपके चरणकमल के सिवा किसी अन्य देव को न कुछ कहता हूँ, न सुनता हूँ, न चिन्तित करता हूँ, न स्मरण करता हूँ, न भजता हूँ और न ही आश्रय बनाता हूँ। (सब कुछ आपका ही करता हूँ) अतः मुझे अपनी दासता प्रदान करें।।28।।

धृतराष्ट्र उवाच -

नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासि[30]-गदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥२९॥

धृतराष्ट्र बोले -

प्रयोजनवश वामनरूप धारण करनेवाले, अतुलनीय पराक्रम वाले, नारायण को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । अपने चारों हाथों में (1) सींग के बने धनुष (2) चक्र (3) तलवार और (4) गदा को धारण करने वाले उस पुरुषोत्तम को नमस्कार अर्पित हो।।29।।

गान्धार्युवाच -

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव[31]॥३०॥

गान्धारी बोलीं -

हे देवों के भी देव! तुम्हीं मेरी माता हो, तुम्हीं पिता हो, तुम्हीं बन्धु हो, तुम्हीं मित्र हो, तुम्हीं विद्या हो, तुम्हीं धन हो और तुम्हीं सब कुछ हो।।30।।

[32]दुर्योधन उवाच -

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्[33] जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
[34]केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥३१॥

दुर्योधन बोले -

यद्यपि मैं धर्मकार्य को जानता हूँ, फिर भी उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं है और पाप कर्म को भी जानता हूँ, फिर भी उससे मेरी निवृत्ति (हटना) नहीं है, क्योंकि मेरे हृदय में स्थित कोई देव जैसे मुझे प्रेरित करते हैं, मैं वैसा ही करता हूँ। (इसे छल-छद्म = पाखण्ड भक्ति कह सकते हैं। प्रभु ज्ञान और कर्म में प्रवृत्ति की क्षमताभर देते हैं, पर प्रवृत्ति-निवृत्ति का चुनाव स्वयं या शास्त्रानुसार करना होता है । यहाँ कृष्ण का

30. चक्राब्ज - ग।
31. अतः परं गान्धार्युक्तौ श्लोकद्वयमधिकं 'ख' पुस्तके :-
आज्ञानतिमिरान्धस्य पुरुषोत्तम केशव!
प्रसीद सन्मुखो नाथ! ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ।। 1 ।।
वासुदेव! जराकृच्छ्रं कष्टं निर्धनजीवनम् ।
पुत्रशोक-महाकष्टं कष्टात् कष्टतरं क्षुधा ।। 2 ।।
32. 'ग' पुस्तके दुर्योधनोक्तिः अग्रे 'कश्यप उवाच' इत्यनन्तरमस्ति ।
33. जानामि पापं- ख, ग ।
34. श्रीकृष्ण देवेन -क, श्रीवासुदेवेन - ख।

नाम लिये वगैर उन पर दोष मढ़ा गया है।)।।31।।

[३५]त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव! श्रीनाथ विष्णो! भवदादिरूप!
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्त्तयिष्ये।।३२।।

तीनों लोकों के चैतन्य स्वरूप! आदिदेव! श्रीनाथ! विष्णो! उत्पन्न होने वाले संसार के आदिरूप! मैं सुबह उठते ही आपके प्रिय करने हेतु संसारयात्रा (व्यवहार) का अनुसरण करुँगा। (जो कुछ किया जायगा उसके प्रेरक आप ही होंगे, अतः मेरा किया हुआ आपको प्रिय होगा ही।)।।32।।

[३६]यन्त्रस्य मम दोषेण शम्यतां मधुसूदन।
अहं यन्त्रं भवान् यन्त्री मम दोषो न दीयताम्।।३३।।

हे मधुसूदन! यन्त्र स्वरूप मेरे दोष से आप कुपित न होकर शान्त ही रहें। मैं यन्त्र हूँ, जब कि आप यन्त्री (यन्त्र को चलानेवाले) हैं। अतः मेरा दोष न दें। (इस पर वक्तव्य ऊपर 31 संख्यक पद्य में द्रष्टव्य है।)।।33।।

द्रुपद उवाच -
यज्ञेशाच्युत गोविन्द! माधवानन्त केशव!
कृष्ण विष्णो हृषीकेश! वासुदेव! नमोऽस्तु ते।।३४।।

द्रुपद बोले -

यज्ञेश! अच्युत! गोविन्द! माधव! अनन्त! केशव! कृष्ण! विष्णो! हृषीकेश (इन्द्रियों के ईश)! वासुदेव! आपको मेरा नमस्कार अर्पित हो।।34।।

जयद्रथ उवाच -
नमः कृष्णाय देवाय[३७] ब्रह्मणेऽनन्तमूर्त्तये।
योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गतः।।३५।।

जयद्रथ बोले -

अगणित रूप वाले ब्रह्मस्वरूप योगेश्वर योग-स्वरूप कृष्णदेव को नमस्कार करता हूँ। हे देव! मैं आपकी शरण में आ गया हूँ।।35।।

विकर्ण उवाच-
कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः।।३६।।

विकर्ण बोले -

कृष्ण-वासुदेव-देवकीनन्दन नाम वाले नन्दगोपकुमार गोविन्द को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।।36।।

सोमदत्त उवाच -
नमः परमकल्याण! नमस्ते विश्वभावन[३८] !

---

35. पद्यमिदं 'ग' पुस्तके नास्ति।
36. पद्यमिदं 'क' पुस्तके नास्ति। 'यन्त्रस्य गुणदोषेण यन्त्रिणो मधुसूदन' - ख ।'
37. शुद्धाय - ख ।
38. भाजनं यत्र जायते - ख, भाविने - क।

वासुदेवाय शान्तायं यदूनां पतये नमः॥३७॥

सोमदत्त बोले -

हे परमकल्याण करनेवाले ! आपको नमस्कार करता हूँ। हे संसार को बनानेवाले! आपको नमस्कार करता हूँ। यदुवंशियों के अधिपति शान्तस्वरूप वासुदेव (श्रीकृष्ण) को नमस्कार करता हूँ।।37।।

विराट उवाच -

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः॥३८॥

विराट बोले -

ब्रह्म- (वेद-) स्वरूप देव को नमस्कार करता हूँ, जो गाय एवं ब्राह्मण की रक्षा में लगे रहते हैं तथा संसार के हितकारी कृष्ण भगवान् हैं, इसी प्रकार गोविन्द रूप में उन्हें नमस्कार करता हूँ।।38।।

शल्य उवाच -

अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्॥३९॥

शल्य बोले -

अतसी (तीसी, तेलहन) के फूल के समान नील वर्ण के पीताम्बर अच्युत को जो नमस्कार करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं है।।39।।

बलभद्र उवाच -

कृष्ण कृष्ण! कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव।
संसारार्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम॥४०॥

बलभद्र बोले -

कृष्ण! कृष्ण! तुम कृपा करने वाले हो, इसलिये असहायों का सहायक बनो और हे पुरुषोत्तम! संसार रूपी सागर में डूबे हुए प्राणियों पर प्रसन्न हो जाओ, उनको उबारो।।40।।

श्रीकृष्ण उवाच-

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः।
[३९]पङ्कं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्॥४१॥

श्रीकृष्ण बोले -

जो व्यक्ति प्रतिदिन कृष्ण-कृष्ण कहता हुआ मेरा स्मरण करता है, उसका मैं नरक से उद्धार करता हूँ, जैसे पङ्क का भेदन कर कमल निकल जाता है। (अर्थात् पाप का भेदन करवाकर मैं भक्त को निकाल लेता हूँ।)।।41।।

[४०]नित्यं वदामि मनुजाः स्वयमूर्ध्वबाहुर्यो मां मुकुन्द-नरसिंह-जनार्दनेति।
जीवो जपत्यनुदिनं मरणे रणे वा पाषाणकाष्ठसदृशाय ददाम्यभीष्टम्॥४२॥

हे मनुष्यों! मैं बाँह उठाकर (प्रतिज्ञा कर) नित्य घोषणा कर रहा हूँ कि जो व्यक्ति मुकुन्द, नरसिंह, जनार्दन इन नामों के द्वारा प्रतिदिन मेरा जप करता है, वह पत्थर या काठ के समान कठोर या जड़ ही

39. जलं - ग।

40. सत्यं - क।

क्यों न हो, उसे मरण के समय या रणभूमि में अभीष्ट फल देता ही हूँ।।42।।

ईश्वर उवाच -

सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम्।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति पुत्रक[41]!।।४३।।

ईश्वर (महादेव) बोले -

हे पुत्र! जो मनुष्य एक बार भी 'नारायण' शब्द का उच्चारण करता है, वह तीन सौ कल्प समय तक गंगा आदि सभी तीर्थों में स्नान करने का फल पा जाता है।।43।।

[42]पार्वत्युवाच उवाच -

अत्रैव गंगा यमुना त्रिवेणी[43] गोदावरी सिन्धुसरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्युतोदारकथाप्रसङ्गः।।४४।।

पार्वती बोलीं -

यहीं पर गङ्गा, यमुना, त्रिवेणी (प्रयाग का संगम), गोदावरी, सिन्धु और सरस्वती विद्यमान हैं (क्योकि यहाँ भगवत्कथा का प्रसंग चल रहा है)। वहाँ सभी तीर्थ आकर बसते हैं जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण की उदार (विशाल आशय वाली) कथा का प्रसंग चलता रहता है।।४४।।

[44]ध्रुव उवाच -

अन्तकाले स्मरन् विष्णोः प्रयाति परमं पदम्।
येन पादोदकं विष्णोर्भक्त्या मूर्ध्नि धृतं मया।।४५।।

ध्रुव बोले -

कोई भी व्यक्ति प्राणवियोग के समय विष्णु का स्मरण करता हुआ परम पद को प्राप्त करता है, क्योंकि मैंने विष्णु के चरणोदक को भक्तिपूर्वक मस्तक पर रखा था (और उसी के प्रभाव से सर्वोच्च स्थान ध्रुवलोक में विराजमान हूँ।)।।45।।

यम उवाच -

[45]सकलनयन वासुदेव विष्णो! धरणीधराच्युत-शंखचक्रपाणे।
भव शरणमीरयन्ति ये वै त्रायस्वैवं दूरतरेण तान् हि पापात्।।४६।।

यमराज बोले -

सभी प्राणियों के नयनस्वरूप ! वासुदेव! विष्णो! धरणीधर! अच्युत! शंखधर! चक्रपाणे! आपके शरण में आकर जो कीर्त्तन करते हैं, पाप से दूर कर उनकी रक्षा करें।।46।।

नरके पच्यमाने[46] तु यमेन परिभाषितम्।

---

41. पूतकः - क।,
42. सूत - क, ग ।,
43. तत्रैव गङ्गा यमुना च तत्र - ग।
44. अस्य पद्यस्य च अभावः - क, ग ।
45. पद्यमिदं 'ख' पुस्तकेऽधिकमस्ति ।,
46. मानस्य - क, ख। 47. सहस्रेषु - क, ख ।,

किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशकः।।४७।।

नरक में यातना सहते हुए लोगों के विषय में (यमराज ने) उन्हें कहा कि क्या तूने क्लेशनाशक केशव देव की अर्चना नहीं की? इसी से ऐसा कष्ट पा रहे हो।।47।।

नारद उवाच -

जन्मान्तरसहस्रेण[४७] तपोध्यान - समाधिभिः[४८]।

नाराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते[४९]।।४८।।

नारद बोले -

हजारों जन्मों से तपस्या, ध्यान और समाधि के द्वारा पापों के क्षीण होने पर मनुष्यों के हृदय में कृष्ण की भक्ति उत्पन्न होती है।।48।।

प्रह्लाद उवाच -

नाथ! योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।

तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि।।४९।।

प्रह्लाद बोले -

हे प्रभो! जिन-जिन हजारों योनियों में मैं आगे जन्म लेने जाऊँगा, उन-उन में मुझे, तुझ में सदा निश्चल भक्ति बनी रहे, जो विचलित न होवे।।49।।

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी[५०]।

[५१]त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्नापसर्पतु।।५०।।

विवेकहीन व्यक्तियों की जो प्रीति कामादि विषयों में अचल होती है, वही प्रीति तुझे स्मरण कर रहे मेरे हृदय से कभी हटे नहीं।।50।।

विश्वामित्र उवाच -

किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः।

यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः।।५१।।

विश्वामित्र बोले -

जो प्रतिदिन नारायण देव का एकाग्र चित्त से ध्यान करता है, उसे दान करने से, तीर्थाटन करने से, तपस्या करने से और यज्ञ करने से क्या प्रयोजन? अर्थात् कुछ नहीं, इन सब से जो फल होते हैं वे ध्यान से ही हो जाते हैं।।51।।

जमदग्निरुवाच-

[५२]नित्योत्सवो भवेत् तेषां नित्यश्रीर्नित्यमङ्गलम्।

48. समाधिना - ग।

49. अतः परं पद्यमेकम् अधिकं 'ख' पुस्तके :-

"साधु पृष्टं महीपाल! विष्णुभक्तिसमन्वित ।

यस्य स्मरणमात्रेण महापापं प्रणश्यति" ।।

50. ष्वनुयायिनाम्- क। ,

51. त्वदनुस्मरणादेव- ग।

52. नित्योत्सवभरस्तेषां- क।

येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः॥५२॥

जमदग्नि बोले -

जिनके हृदय में स्थित मङ्गलभवन भगवान् हरि विराजमान हैं, उनका नित्य उत्सव होता है, नित्य धनागम होता है और नित्य मंगल ही मंगल होता है।।52।।

भरद्वाज उवाच -

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥५३॥

भरद्वाज बोले -

जिनके हृदय में स्थित नीलकमल के समान श्यामल जनार्दन भगवान् हैं, उनका लाभ है, जय है। उनका पराजय कहाँ से हो सकता है? अर्थात् कभी नहीं।।53।।

गौतम उवाच -

गोकोटिदानं ग्रहणेषु काशी [५५]प्रयाग-गङ्गायुत-कल्प-वासः[५५]।
[५६]यज्ञायुतं मेरुसुवर्णदानं [५७]गोविन्दनामस्मरणेन तुल्यम्॥५४॥

गौतम बोले-

करोड़ गाय दान करना, ग्रहण के समय काशी में स्नान करना, प्रयाग में एवं अन्यत्र गंगातट पर दस हजार बार कल्पवास (संकल्पपूर्वक नियत अवधि के लिय रहना) करना, दस हजार यज्ञ करना, सुमेरु पर्वत के बराबर स्वर्ण दान करना, ये सब धर्मकार्य गोविन्द के नामस्मरण के बराबर हैं।।54।।

अत्रिरुवाच -

गोविन्देति सदा स्नानं गोविन्देति सदा जपः।
गोविन्देति सदा ध्यानं सदा गोविन्दकीर्त्तनम्॥५५॥

अत्रि बोले -

मैं गोविन्द कहकर ही सदा स्नान करता हूँ, गोविन्द कहकर ही सदा जप करता हूँ, गोविन्द का ही सदा ध्यान करता हूँ और गोविन्द का सदा कीर्त्तन करता रहता हूँ। अथवा, गोविन्द नाम का उच्चारण करना ही सदा स्नान, जप, ध्यान और कीर्त्तन है।।55।।

[५८]अक्षरं परमं ब्रह्म, गोविन्देत्यक्षर[५९] परम्।
तस्मादुच्चारितं येन, ब्रह्मभूयाय कल्पते॥५६॥

गोविन्द नाम का तीन अक्षर परम ब्रह्म है, गोविन्द नाम अविनाशी है, इसलिये जिसने इसके उच्चारण का अभ्यास बना लिया है, उसने ब्रह्म में मिलने का उपाय कर लिया है।।56।।

[६०]भूरिश्रवा उवाच-

---

53. नित्यं नित्यं च मङ्गलम् - ग। 54. प्रयागतीर्थे यदि कल्पवासी - ख ।
55. कर्मवासी - क।
56. यद्दीयते - ख।
57. गोविन्दनाम्ना न समा न तुल्यम् - ख।,
58. यत्राक्षरं परं ब्रह्म गोविन्देति त्रयाक्षरम् - ख। अत आरभ्य अष्टश्लोकाः 'क' पुस्तके न सन्ति।,
59. गोविन्देति त्र्यक्षरं परम् - ग।,
60. अतः परं 58 संख्यकपद्यपर्यन्तं क-ग पुस्तकयोः नास्ति।,

पापव्याली मुखे तस्य जिह्वारूपेण तिष्ठति।
यो न वक्ति दिवारात्रौ गुणान् गोविन्दसम्भवान्।।५७।।

भूरिश्रवा बोले -

उस व्यक्ति के मुख में पापरूपिणी साँपिन जिह्वा रूप में बसती है जो व्यक्ति दिन या रात में गोविन्द के गुणों का बखान नहीं करता है।।57।।

कविरुवाच

नास्ति विष्णोः परं सत्यं, नास्ति विष्णोः परं पदम् ।
नास्ति विष्णोः परं ज्ञानं, नास्ति विष्णोः परं तपः[६१]।।५८।।

शुक्राचार्य बोले -

विष्णु से बढ़कर कोई सत्य नहीं है, विष्णु से बढ़कर कोई पद (स्थान, लोक) नहीं है, विष्णु से बढकर कोई ज्ञान नहीं है और विष्णु से बढ़कर कोई तप नहीं है।।58।।

[६२]अच्युतः कल्पवृक्षोऽसावनन्तः कामधेनवः।
चिन्तामणिश्च गोविन्दो हरे र्नाम विचिन्त्यताम्।।५९।।

ये अच्युत कल्पवृक्ष हैं, अनन्त कामधेनु हैं, गोविन्द चिन्तामणि हैं। अतः हरि के नाम का चिन्तन करें, जिससे मनोवाञ्छित सभी फल प्राप्त हो सकेंगे।।59।।

[६३]अन्तरिक्ष उवाच

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः।।60।।

अन्तरिक्ष (आकाश) बोले -

भगवान् देवकीनन्दन की जय हो, जय हो। वृष्णिवंश के दीपक कृष्ण की जय हो, जय हो। मेघ के समान कोमल अंग वाले की जय हो, जय हो। पृथ्वी के भार को नष्ट करनेवाले मुकुन्द की जय हो, जय हो।।60।।

[६४]पिप्पलायन उवाच -

श्रीमन्नृसिंह-विभवे गरुडध्वजाय तापत्रयोपशमनाय भवौषधाय।
कृष्णाय वृश्चिक-जलाग्नि-भुजङ्ग-रोग क्लेशव्ययाय हरये गुरवे नमस्ते।।६९।।

पिप्पलायन बोले -

हे कृष्ण! हे हरि, हे श्रेष्ठ, श्रीमान् नरसिंह विभुस्वरूप आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी ध्वजा में गरुड़ अंकित है; आप संसार के त्रिविध (दैहिक, दैविक, भौतिक) ताप का शमन करते हैं, संसारस्थ व्याधि के औषध हैं, बिच्छू, पानी, आग, साँप एवं रोग से होनेवाले क्लेश को समाप्त करनेवाले हैं।।69।।

हविर्होत्र उवाच

कृष्ण! त्वदीय-पदपङ्कज-पिञ्जरान्ते

---

61. विष्णोश्च वैष्णवम्-ख।
62. इतः पूर्व 'ख' पुस्तके - 'हरिरुवाच' 'ग' पुस्तके 'शुक्र उवाच'
63. हरिरुवाच - ग।,
64. प्रबुध - ख ।

अद्यैव मे विशतु मानस-राजहंसः।
प्राणप्रयाण-समये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥६२॥

हविर्होत्र (घृत से हवन करने या पानेवाले) ने कहा -

हे कृष्ण! आपके चरणकमलरूपी पिंजरे में आज ही मेरे मनरूपी मानसरोवर का राजहंस घुस जाय, क्योंकि (अभी उस में चलने की शक्ति है, पर) प्राण छूटते समय कफ-वात-पित्त से जब कण्ठ रुँध जायगा, तब आपका स्मरण कैसे हो सकेगा?।।62।।

[६५]द्रुहिण उवाच-
हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥६३॥

द्रुहिण (प्रजापति) बोले-

हरि का नाम ही मेरा जीवन है और कलियुग में दूसरी गति ही नहीं है- यह ध्रुव सत्य है।।63।।

[६६]वसिष्ठ उवाच -
कृष्णेति मङ्गलन्नाम यस्य वाचा[६७] प्रवर्तते।
भस्मीभवन्ति तस्याशु[६८] महापातक-कोटयः॥६४॥

वसिष्ठ बोले -

जिस व्यक्ति की वाणी में मङ्गलमय 'कृष्ण' नाम रहता है, उसके कोटि-कोटि महापातक शीघ्र भस्म हो जाते हैं।।64।।

अरुन्धत्युवाच-
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने[६९]।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः॥६५॥

अरुन्धती बोलीं -

कृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा तथा प्रणाम करने वालों के क्लेशों को नष्ट करने वाले गोविन्द को बार-बार नमस्कार करती हूँ।।65।।

कश्यप उवाच -
कृष्णानुस्मरणादेव पापसंघातपञ्जरम्।[७०]

---

65. दुर्मिणुवाच - ख । विदुर - ग। इतः पुनः क पुस्तकं प्रचलति ।
66. इदं पद्यं च 'ख' पुस्तके नास्ति।,
67. वाचि - क।
68. राजेन्द्र - क ।,
69. देवकीनन्दनाय च - क।
70. सञ्चयम् - क।
71. मापन्नः - क।
72. अतः परं 'ग' पुस्तके 'दुर्योधन उवाच' वर्तते ।

शतधा भेदमाप्नोति[71] गिरिर्वज्रहतो यथा[72]॥६६॥

कश्यप बोले -

कृष्ण के नित्य स्मरण से ही पापसमूह रूप नरकंकाल सौ खण्डों में विभक्त होकर नष्ट हो जाते हैं जैसे वज्र के आघात से पर्वत टूट जाता है।।66।।

भृगुरुवाच-

नामैव तव गोविन्द! नाम त्वत्तः शताधिकम्।
ददात्युच्चारणान्मुक्तिं भवानष्टाङ्गयोगतः[73]॥६७॥

भृगु बोले -

हे गोविन्द! आप से सौ गुना अधिक फलदायक तो आपका नाम ही है, क्योंकि आपका नाम उच्चारणमात्र से भक्त को मुक्ति दे देता है; जबकि आप अष्टाङ्गयोग के अभ्यास से मुक्ति देते हैं। (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि- ये योग के आठ अङ्ग हैं)।।67।।

[74]लोमश उवाच -

नमामि नारायण पादपङ्कजं
करोमि नारायणपूजनं सदा।
[75]वदामि नारायणनाम निर्मलं
स्मरामि नारायणतत्त्वमव्ययम्[76]॥६८॥

लोमश बोले -

नारायण के चरणकमल का नमन करता हूँ, नारायण की सदा पूजा करता हूँ, नारायण के निर्मल नाम का उच्चारण करता हूँ और नारायण के अव्यय तत्त्व का स्मरण करता हूँ।।68।।

[77]स्मृते परमकल्याण-भाजनं यत्र जायते।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥६९॥

जिन के स्मरण करने पर लोग जहाँ कहीं भी परम कल्याण पाने का अधिकारी बन जाता है उन नित्य अजन्मा पुरुष हरि की शरण में जाता हूँ।।69।।

[78]गर्ग उवाच -

नारायणेति मन्त्रोऽस्ति, वागस्ति वशवर्त्तिनी।
तथापि नरके मूढ़ाः[79] पतन्तीत्यद्भुतं महत्॥७०॥

गर्ग बोले -

'नारायण' यह मन्त्र उपलब्ध है और उसके उच्चारण हेतु वाणी अपने वश में है, तथापि मूढ़ व्यक्ति

73. विना त्वष्टाङ्गयोगतः '- क।
74. लोमहर्षण - ख।
75. जपामि नारायणतत्त्वमव्ययम् - क ।
76. मक्षरंविभुम् - क।
77. इतः पूर्व 'ग' पुस्तके - 'शौनक उवाच'।
78. गार्ग्य - क।
79. घोरे -ख, ग।

नरक में गिरते जाते हैं- यह आश्चर्य है।।70।।

दाल्भ्य उवाच -

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने।
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।।७१।।

दाल्भ्य बोले -

जिसे जनार्दन में भक्ति है उसके बहुत मन्त्रों से क्या प्रयोजन है। बस, उसे तो, उसके लिये सभी प्रयोजनों का साधक, एक ही मन्त्र 'नमो नारायणाय' पर्याप्त है।।71।।

वैशम्पायन उवाच -

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनञ्जयः[80]।
तत श्रीर्विजयो भूति र्ध्रुवा नीतिर्मति र्मम।।७२।।

वैशम्पायन बोले -

जहाँ योगेश्वर कृष्ण और पार्थ (पृथा = कुन्ती के पुत्र) धनञ्जय (अर्जुन) विराजमान रहें, वहाँ श्री (लक्ष्मी), विजय, ऐश्वर्य और स्थिरनीति निश्चित रूप से उपस्थित रहते हैं, यह मेरा मत है।।72।।

[81]अङ्गिरा उवाच -

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः।।७३।।

अंगिरा बोले -

दुष्ट मन वालों के द्वारा भी स्मरण किये जाने पर हरि उनके पाप का हरण करते हैं (क्योंकि 'हरि' शब्द का अर्थ ही है- पाप को हरनेवाला) जैसे बिना इच्छा के भी स्पर्श करने से अग्नि जला ही डालता है।।73।।

पराशर उवाच -

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धःपरिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।।७४।।

पराशर बोले -

जिसने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरों का उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षप्राप्ति की यात्रा के लिए कमर कस लिया।।74।।

[82]पुलस्त्य उवाच -

हे जिह्वे! रससारज्ञे! सर्वदा मधुरप्रिये!
नारायणाख्यं पीयूषं पिब हृद्यं[83] निरन्तरम्।।७५।।

पुलस्त्य बोले -

रसतत्त्व को जानने वाली, सतत मधुर को प्रिय माननेवाली, जिह्वे! तू नारायण नाम के मनलायक

---

80. धनुर्धरः -ग।,
81. अग्निरुवाच -ग।,
82. पौलस्त्य -ख।,
83. जिह्वे -क, ग।

अमृत को सतत पीती रह।।75।।

गरुड उवाच -

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्त्वा क्षमस्व परमेश्वर।।७६।।

गरुड़ बोले -

मेरे द्वारा तो दिन-रात आपके हजारों अपराध किये ही जाते हैं, हे परमेश्वर! 'यह मेरा दास है'- ऐसा मानकर मुझे क्षमा करें।।76।।

[84]व्यास उवाच-

सत्यं सत्यं पुनः सत्यम् उद्धृत्य भुजमुच्यते[85]।
नास्ति वेदात् परं शास्त्रं, न देवः केशवात् परः।।७७।।

व्यास बोले -

बार बार सत्य की प्रतिज्ञा के रूप में बाँह उठाकर कह रहा हूँ कि वेद से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है और केशव से बढ़कर कोई देव नहीं है।।77।।

धन्वन्तरिरुवाच -

अच्युतानन्त - गोविन्द - नामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः, सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।७८।।

धन्वन्तरि बोले -

अच्युत, अनन्त, गोविन्द- इन नामों के उच्चारण रूप औषधि के सेवन से सभी रोग दूर होते हैं - यह मैं सच-सच बोल रहा हूँ।।78।।

मार्कण्डेय उवाच -

[86]सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चान्धजडमूकता।
[87]यन्मुहूर्त्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत्[88]।।७९।।

मार्कण्डेय बोले -

वह हानि है, वह बड़ा छिद्र है, वह अन्धापन है, वह जड़ता (बेकाम होना) और गूँगापन है, जो मुहूर्त्तभर या क्षणभर भी वासुदेव का चिन्तन नहीं किया करता है।।79।।

[89]अगस्त्य उवाच -

निमिषं निमिषार्धं वा प्राणिनां विष्णुचिन्तनम् ।

---

84. अस्य पद्यस्य च अभावः - क, ग।
84. अतःपरं पद्यद्वयस्याभावः - क । वेदव्यास - ख।
85. सत्यं सत्यं वदाम्यहम् - ग।
86. 'स्वर्गदं मोक्षदं देवं सुखदं जगतो गुरुम्' - ग।
87. कथं मुहूर्त्तमपि तं - ग।
88. वासुदेवे न चिन्तनम् - क, ख।
89. अगस्तिरुवाच - क, ख ।
90. वनम् - क, ग।

तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागं नैमिषं गया[९०]॥८०॥

अगस्त्य बोले -

जहाँ-जहाँ प्राणियों के द्वारा एक पलक वा आधा पलक समय में भी विष्णु का चिन्तन हो जाता है, वहाँ-वहाँ कुरुक्षेत्र, प्रयाग, नैमिषारण्य और गया तीर्थ हो जाते हैं।।80।।

वामदेव उवाच -

[९१]मनसा कर्मणा वाचा ये स्मरन्ति जनार्दनम्।

क्रतुकोटिसहस्राणां ध्यानमेकं विशिष्यते॥८१॥

वामदेव बोले -

मन से, कर्म से और वचन से जो व्यक्ति जनार्दन का स्मरण (ध्यान) करते हैं, उनका एक ध्यान करोड़ों हजार यज्ञ से बढ़कर होता है।।81।।

शुक उवाच -

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।

इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥८२॥

शुकदेव बोले -

सभी शास्त्रों का मन्थन कर तथा वार-वार विचार करने पर यही एक निर्णय हुआ कि सदा नारायण का ध्यान करना चाहिए।।82।।

[९२]सनत्कुमार उवाच -

शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।

औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः॥८३॥

सनत्कुमार बोले -

जब प्राणी का शरीर जर्जर हो जाय और देह व्याधिग्रस्त हो जाय तो वहाँ गंगाजल औषध और नारायण भगवान् विष्णु वैद्य होते हैं।।83।।

[९३]शौनक उवाच-

[९४]भोजने छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति साधवः[९५]।

[९६]योऽसौ विश्वम्भरो देवः स किं भक्तानुपेक्षते॥८४॥

शौनक बोले -

भोजन, वस्त्र एवं घर की चिन्ता साधुव्यक्ति व्यर्थ ही करते हैं, क्योंकि जो ये भगवान् विश्वम्भर

91. निमिषं निमिषार्ध वा - क। 'निमिषं निमिषार्धं वा प्राणिनां विष्णुचिन्तनम् । कल्पकोटिसहस्राणि लभते वाञ्छितं फलम्' - ग।,

92. श्रीमहादेव - ग। अस्यांशस्य अभावः - क,

93. 'शौनक उवाच' क-अभावः - क।,

94. अस्य पद्यस्य पञ्चपद्यानन्तरं पाठः - क।

95. वैष्णवाः - ग।,

96. यो वै - क।,

97. सनत्कुमार - ग। अस्य पद्यस्य च अभावः - क।,

98. गदा चक्रं - ग।,

99. शंखः करतले यस्य - ख।

(संसार का भरण करनेवाले) हैं, वे क्या भक्तों की उपेक्षा कर सकते हैं?।।84।।

[९७]सनन्दन उवाच -

यस्य हस्ते [९८]जगच्चक्रं गरुडो यस्य वाहनम्।
[९९]शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मं स मे विष्णुः प्रसीदतु।।८५।।

सनन्दन बोले -

जिनके हाथ में संसारचक्र है, जिनके वाहन गरुड़ हैं, जो शंख चक्र गदा एवं कमल को धारण करते हैं, वे विष्णु भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न होवें।।85।।

[१००]शेष उवाच -

न भूमि-पर्वतैर्भारो न भारस्तु वनस्पतिः।
विष्णुभक्तिविहीनस्य तस्य भारः सदा मम।।८६।।

शेषनाग बोले -

न मुझे भूमि एवं पर्वतों का भार है और न ही वनस्पतियों का भार है, जो विष्णु की भक्ति से हीन हैं उन्हीं का भार मुझे सदा सताया करता है।।86।।

चन्द्र उवाच -

गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।
अद्यापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः।।८७।।

चन्द्रमा बोले -

चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह जा-जा कर लौट आते हैं, पर विष्णु भगवान् के द्वादशाक्षर मन्त्र- 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' के चिन्तन करनेवाले विष्णुलोक पहुँचकर आज तक नहीं लौटे सुने गये हैं।।87।।

सूर्य उवाच -

अच्युताच्युत हरे परमात्मन्! कृष्ण राम पुरुषोत्तम विष्णो!
वासुदेव भगवन् अनिरुद्ध! श्रीपते! शमय दुःखमशेषम्।।८८।।

सूर्य बोले -

अच्युत! हरे! परमात्मन्! कृष्ण! राम! पुरुषोत्तम! विष्णो! वासुदेव! भगवन्! अनिरुद्ध श्रीपते! (इतने नामों से पुकार कर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि) आप मेरे सारे दुःखों को शान्त करें।।88।।

अम्बरीष उवाच -

मग्नं महामोहतरङ्गभङ्गे क्रूरस्मरग्राहगृहीतपादम्।
गतागत-भ्रान्तिविवृत्तरन्ध्रे भवार्णवान्मां परिपाहि विष्णो!।।८९।।

अम्बरीष बोले -

हे विष्णो! संसार रूपी समुद्र में बुरी तरह फँसे मुझे वहाँ से उबार कर बचाओ, जहाँ मैं महामोहरूपी तरंग के उछाल में डूबा हुआ हूँ और इधर-उधर या इस जन्म से उस जन्म में आने-जाने रूपी भँवर के

---

100 अतः परं 4 श्लोकाः केवलं 'ख' पुस्तके सन्ति ।

1. सूत उवाच- ख। एवं वै ब्रह्मभूयाय तपोध्यानसमाधिगम् - ख ।

2. सुरश्रेष्ठमेकं - क, ख।,

द्वारा बनाये गये फैले गर्त में क्रूर कामदेव रूपी ग्राह ने मेरे पैरों को ग्रसित कर लिया है।।89।।

[3]सूत उवाच -

एवं ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः।

कीर्त्तयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं[4] नारायणं विभुम्।।९०।।

सूत बोले

इस तरह ब्रह्मा आदि देवगण और तपस्वी ऋषिगण, ये सभी सुरश्रेष्ठ नारायण विभु भगवान् के गुणों का बखान करते हैं।।90।।

इदं पवित्रमायुष्यं पुण्यं पापप्रणाशनम्।[5]

दुःस्वप्ननाशनं स्तोत्रं पाण्डवैः परिकीर्त्तितम्।।९१।।

इस पवित्र, आयु बढ़ानेवाले, पुण्य, पापनाशक और दुःस्वप्ननाशक 'पाण्डवगीता' स्तोत्र का सर्वप्रथम पाण्डवों ने पाठ किया।।91।।

यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिस्तद्गतचेतसा।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति[6]।।९२।।

जो व्यक्ति सुबह उठकर पवित्र होकर विष्णु में मन लगाकर इस 'पाण्डवगीता' को पढ़े, वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक जाता है।।92।।

[7]गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत् फलम्।

तत्फलं समवाप्नोति यः पठेदिति संस्तवम्।।९३।।

विधिपूर्वक सौ हजार गाय दान करने का जो फल होता है, उस फल को वह पा लेता है जो इस पाण्डवगीता स्तोत्र का पाठ करता है।।93।।

[8]अश्वमेधसहस्रस्य यत् फलं पाण्डुनन्दन।

तत्फलं लभते पार्थ! धन्यं मन्ये महीतले।।९४।।

हे पाण्डुपुत्र! हजार अश्वमेध यज्ञों से (मनुष्य) जो फल प्राप्त करता है, वह फल नाम-कीर्त्तन से प्राप्त हो जाता है। और हे पार्थ! उसे मैं पृथ्वी पर धन्य मानता हूँ।।94।।

[9]गङ्गा गीता च गायत्री गोविन्दो गरुडध्वजः।

चतुर्गकारसंयुक्तः पुनर्जन्म न विद्यते।।९५।।

गंगा, गीता, गायत्री और ध्वजा में गरुड़चिह्न वाले गोविन्द- इन चार गकारों से जो संयुक्त है, अर्थात् इनसे सम्बन्ध रखता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता है।।95।।

गीतां यः पठते नित्यं श्लोकार्धं श्लोकमेव वा।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।। ९६ ।।

---

3. वैष्णवं विष्णुमुत्तमम् - क, ख।

4. विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् - क, ख। (इस पद्य के बीच में 93 संख्यक पद्य का समावेश 'ग' पुस्तक में हैं। 5. पद्यमिदं केवलं 'ग' पुस्तकेस्ति ।

6. पद्यमिंद केवलं 'ख' पुस्तकेऽस्ति।

7. अतः परं श्लोकद्वयं केवलं 'ग' पुस्तकेऽस्ति । अत्रैव 97 संख्यकपद्येन सहैव 'ग' पुस्तके लिखितमस्ति 'इति पाण्डवगीता समाप्ता' इति।

8. श्लोकद्वयं केवलं 'ख' पुस्तकेऽस्ति।

जो व्यक्ति प्रतिदिन गीता का पाठ करता है या उसके एक श्लोक या आधे श्लोक को ही पढ़ता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक जाता है।।96।।

'श्रुत्वेमां पाण्डवीं गीतां गतो यत्र हरिर्विभुः।
तं भावं चित्तमाधाय कीर्त्यते स दिवानिशम्।।९७।।

पाण्डवों के द्वारा प्रवर्तित इस गीता को सुनकर विभु हरि जहाँ कहीं जाते हैं, वहाँ इस भाव को लेकर दिनरात वे पूजित होते रहते हैं (अर्थात् इसके एक बार पारायण से अनन्तकाल तक हरि की पूजा होती रहती है)।।96।।

स एव भगवद्रूपो विष्णुसान्निध्यमाप्नुयात्।
सकामो लभते कामं पुत्रसौख्यं लभेत् पुमान्।।९८।।

वही पाण्डवगीता का पाठ करनेवाला भगवान् के रूप में जाना जाता है और विष्णु के पास वसता है। कामना रहने पर वह पूरी होती है, पुत्र की इच्छा रहने पर लोग पुत्र का सुख पाते हैं।।98।।

वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु।
तस्य प्राप्नोति नैवात्र देव! जन्मादिगं फलम्[9]।।९९।।

जप, होम, पूजा आदि करने के समय में जिसका मन वासुदेव में समर्पित रहता है, हे देव! उसे जन्म जन्मान्तर के दुष्कर्मों का फल नहीं भोगना पड़ता है। (सभी पाप दूर हो जाते हैं)।।99।।

श्रीकृष्ण कृष्ण मधुमर्दन देव विष्णो!
श्रीकैटभान्तक मुकुन्द हरे मुरारे।
श्रीपद्मनाभ नरसिंह हरेऽसुरारे
श्रीराम राम रघुनन्दन पाहि मां हि।।१००।।

श्रीकृष्ण! कृष्ण! मधुसूदन! देव! विष्णो! कैटभ को मारने वाले! मुकुन्द! हरे! मुरारे! पद्मनाभ! नरसिंह! हरे! असुरों के शत्रु! श्रीराम! राम! रघुनन्दन! मेरी रक्षा करें।।100।।

चित्ते मुकुन्दो वदने मुकुन्दो मनस्यनन्तः श्रवणे मुकुन्दः।
येषां सदा सर्वगते मुकुन्दे ते मानवाः किन्न मुकुन्दतुल्याः।।१०१।।

जिन भक्तों के चित्त में मुकुन्द, मुख में मुकुन्द, मन में अनन्त और कान में मुकुन्द वसते हों, इस प्रकार सम्पूर्ण अवयवों में मुकुन्द के रहने पर वे मनुष्य मुकुन्द के समान वन्दनीय क्यों न हों।।101।।

।। इति श्रीपाण्डवगीता समाप्ता ।।

---

9. अतः परं 'क' पुस्तकेऽधिकः श्लोकः -
'बहवोऽप्यपजानन्ति मोहिता मम मायया।
सदाहं द्विजरूपेण विचरामि महीतले' ।।

बक्सर में गंगा : अतीत से वर्तमान तक

श्री लक्ष्मीकान्त मुकुल

गंगा हमारी जीवनदायिनी शक्ति रही है। आध्यात्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से गंगा का महत्त्व हमारे जीवन में है। विगत शताब्दी में इन्हें प्रदूषित कर हमने बहुत कुछ खो दिया है। बिहार के सिद्धाश्रम (बक्सर) के पास गंगा की प्राचीन स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक ने ब्रिटिशकालीन पर्यटकों के यात्रा-वृत्तान्तों के आधार पर तुलना प्रस्तुत की है, जो यहाँ प्रस्तुत है।

गंगा को पवित्र नदी व देवनदी भी कहा गया है, जिसका जल सर्वथा शुद्ध एवं सेवन के लिए हितकर मानने की परम्परा युगों से चली आ रही है, परन्तु मानव विकास के इस अंधेरगर्दी के जमाने में हमने सबसे ज्यादा नुकसान ईश्वर द्वारा प्रदत्त नैसर्गिक संसाधनों का ही किया है। निर्मल जल स्रोत एवं जीवन रस से सिंचित करने वाली नदियाँ इस तथाकथित विकास की बलि चढ़ी हैं। गंगा-तट पर बसा बक्सर पुरातन काल से जन आस्था का केन्द्र रहा है। गंगा स्नान और पवित्र गंगाजल का उपयोग करने में बक्सर की महत्ता आज भी अक्षुण्ण है।

श्री त्रिदण्डिस्वामी द्वारा संकलित सिद्धाश्रम-माहात्म्य' पुस्तक में बक्सर में गंगा की महता परिभाषित होती है, यथा[१]

यत्र गंगा च वक्ता च यत्र चैत्ररथं वनम्।
यत्र सोमेश्वरो देवो मुक्तिस्तत्र न संशयः॥
चकार रेखा बाणेन दुष्टैर्गन्तुं च ह्यक्षमाम्।
रामबाणकृता रेखा यत्र तत्र पुरी शुभा॥
तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्या विमला नदी।
पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता॥

पौराणिक मिथकों के अनुसार बक्सर के गंगा-तट पर ही विष्णु का वामन अवतार हुआ था और त्रेतायुग में विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण अयोध्या से लाये गये थे। श्रीराम द्वारा अहिरौली में अहल्या का उद्धार, शिव-पार्वती का अर्द्धनारीश्वर रूप, इन्द्र के कलुषित शरीर का कमलदह सरोवर में स्नान से तरण और वेदशिरा मुनि के निवास की चर्चायें श्रद्धास्पद ग्रंथों में अनगिनत रूप से हैं।

1) सिद्धाश्रम (बक्सर) माहात्म्यम् भाषा टीकोपेतम्, संपादक, प्रो. सुदामा सिंह, तृतीय संस्करण-2006 ई., प्रकाशक श्रीत्रिदण्डिदेव समाधि स्थल ट्रस्ट, चरित्रवन, बक्सर। पृष्ठ-23, 46

गंगा नदी बक्सर-क्षेत्र में सबसे पहले चौसा को छूती है और कुछ आगे बढ़ने पर ठोरा नाम की नदी का मुहाना बनता है, जहाँ केन्द्रीय कारा के पास वामनदेव का मंदिर है और इस संगम पर वावन द्वादशी का मशहूर मेला लगता है। गंगा नदी बक्सर नगर को छूती हुई उत्तरायण हो जाती है। बक्सर से काफी आगे सपही ग्राम के समीप फिर इसकी धारा एक बड़ा मोड़ लेती हुई दक्षिण-पूर्व तथा आगे चलकर फिर उत्तर-पूर्वाभिमुख हो जाती है।

भूगोलवेज्ञाओं के अनुसार महर्षि विश्वामित्र के बक्सर निवास के युग में गंगा करीमुद्दीन रेलवे स्टेशन के आसपास बहा करती थी। यह स्टेशन वाराणसी, बलिया रेलवे लाइन पर बक्सर से करीब 30-25 किलोमीटर पश्चिम और उत्तर के कोप पर अवस्थित है। गाजीपुर से पश्चिम ही गंगा उत्तराभिमुख होती हुई वर्तमान करीमुद्दीन से गुजरती थी।[१] महाभारत काल में वह करीमुद्दीन से होती हुई चौरा-कथरिया बावनबिगहा (बक्सर के पूरब) कुलहड़िया-नदाव होती हुई बिहिया-जगदीशपुर के बीच बहने लगी थी। पहले सरयू और गंगा का संगम मलद राज्य में था, जो बलिया से मीलों पश्चिम है। वर्तमान में सरयू-गंगा का संगम बलिया से पूरब मांझी (सारण जिला) के पास है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार विश्वामित्र को मलद राज्य के उस संगम को पारकर करूष राज्य के सिद्धाश्रम में आने में तीन दिन लगे थे। सिद्धाश्रम में मुनि जी की तपोभूमि और यज्ञशाला थी, जिसे ताड़का जैसी राक्षसीवृत्ति के लोग नष्ट करने पर तुले हुए थे। बक्सर में गंगा नदी का कगार ठोरा संगम से श्मशान घाट तक और अहिरौली से आगे ढलाननुमा है, परन्तु चरित्रवन और नगर के तट पर गंगा का कगार तीखा और सीधा है, जिससे स्पष्ट होता है कि बरसात में गंगा की उमड़ती प्रचंड धारायें नगर के तट का आक्रामक रूप से कटाव करती हैं।

बक्सर में गंगा की अवस्थिति से गंगा घाट, तट के किनारे के असंख्य मंदिर, बक्सर किला, गंगा से जुड़ी वैदिक और मानवीय क्रियाकलाप बक्सर के जनजीवन को अनंत काल से प्रभावित करते रहे हैं। बक्सर के सोहनी पट्टी के निवासी और पुरातत्त्ववेत्ता पं. सीताराम उपाध्याय ने अपने बृहत् निबंध 'गंगा घाटी सभ्यता' में लिखा है कि गंगा घाटी सभ्यता एक स्वयमेव विकसित सभ्यता थी, जो हड़प्पा सभ्यता से ही नहीं, बल्कि विश्व की सभी सभ्यताओं से पुरानी थी।[३] गंगा घाटी की खोज सरकार द्वारा 1926 ई. में आशुतोष बनर्जी शास्त्री के निर्देशन में बक्सर टीला की खुदाई से हुई। इस खुदाई से पुरातात्त्विक महत्त्व के अवशेष प्राप्त हुए। बड़ी मात्रा में सिक्के, मुहरें, मिट्टी व धातु की पुरातन वस्तुएँ, मृण्मय-मूर्तियाँ, मातृ देवी की मूर्ति तथा सुव्यवस्थित नगर के अवशेष भी मिले थे। बुद्ध, मौर्य, कुषाण और गुप्तकाल के अनेक पुरावशेष यहाँ से प्राप्त किये गये थे। देश की आजादी के बाद बिहार सरकार ने बक्सर के गंगा तटीय टीले को सुरक्षित स्मारक घोषित करते हुए पुनः 1964-67 ई. में खुदाई करवाई। स्व. उपाध्याय के अनुसार बक्सर की गंगा घाटी में निवास करनेवाले ही वैदिक युग और वैदिक संस्कृति के निर्माता थे और वे ही यहाँ के आदि मानव थे, जो पत्थरों के हथियारों का उपयोग करते थे। सरकार ने यहाँ से प्राप्त सारे पुरातात्त्विक अवशेषों को संग्रहित करके 'सीताराम उपाध्याय संग्रहालय, बक्सर, में दर्शनार्थ सुरक्षित करवा रखा है।

---

2) वीर कुवँर सिंह और अजायब महतो, लेखक- अवध बिहारी कवि, प्रकाशक- नील निकेतन, अनुवास, बक्सर, वर्ष 2000, पाठ-भोजवंश और भोजपुर वैदिक काल, पृष्ट-28

3) बक्सर जिला स्मारिका, 1992 पृष्ट-28

अदालती दस्तावेज, यात्रा विवरण, चित्रकारों के बनाये चित्रों, कैडस्ट्रल सर्वे के नक्शों एवं अतिवृद्धों के कथनों के आधार पर भी बक्सर के गंगा घाटों के अतीतकालीन पुरातन महत्वों का वर्तमान के नजरिये से मूल्यांकन किया जा सकता है। बक्सर के पुराने मंदिरों का पहला लिखित प्रमाण सरकार शाहाबाद के जमींदार बिक्रमजीत सिंह एवं बाबू अरिमर्दन सिंह के भू-स्वामित्व संबंधी विवाद के कागजात में मिलता है। इस विवाद को सलटाने के लिए सन् 1789 ई. में एक पंचायत हुई थी, जिसका विवरण इस प्रकार है-

''ताः २० असाढ़, ११९६ फसली, ५ असाढ़ सुदी, १६९६ फसली महाराज बिक्रमजीत सिंह और बाबू अरमिर्दन सिंह के बीच पंचनामा।''

''हम, शुजा सिंह इलाकादार, राम बलराम सिंह सूबा बंगाल के नायब, गंगाधर चौधरी, जयपाल सिंह, दामोदर राय जैन और संगम मिसिर वैद्य ने, जिन्हें दोनों पक्ष ने पंच नियुक्त किया है, सरकार शाहाबाद के जमींदार बिक्रमजीत सिंह तथा अरिमर्दन सिंह के मुकदमें पर निर्णय उच्च न्यायालय में हुआ था, रामेश्वरनाथ जी, सुमेश्वरनाथ जी तथा गौरीशंकर महाराज के तीर्थ बक्सर के चरित्रवन में बाजाब्ता विचार किया गया है। हमारी राय है कि राजा को पुराने इलाके का बन्दोबस्त मिलना चाहिए, जैसा सरकारी बही में दर्ज है, और 1200 रु. जमा की सम्पत्ति मोकरी में बाबूजी के साथ बन्दोबस्त होनी चाहिए; और विवाह, मृत्यु तथा अच्छी-बुरी घटनाओं एवं ईश्वरीय तथा सरकारी कार्यों का खर्च रियासत से दिया जाना चाहिए, अन्यथा उक्त कार्यों के लिए उतने मूल्य की सम्पत्ति दी जानी चाहिए।'

यह पंचनामा महाराज कुमारी शिवराज कुवँरी उज्जैनी, रीवा की महारानी तथा महाराज केशव प्रसाद (डुमरावँ राज) के बीच मुकदमे (शाहाबाद के जिला जज के न्यायालय में सन् 1914, टाइटिल सूट नं.-80/3) में पेश किया गया था।[४]

19वीं सदी के प्रारंभ काल के बक्सर का पूरा विवरण ईस्ट इंडिया कंपनी के सर्वेयर डॉ. फ्रांसिस बुकानन के शाहाबाद रिर्पोट से ज्ञात होता है।[५] उसके यात्रा काल सन् 1812-13 में बक्सर डुमराँव की अपेक्षा कम आबादी का स्थल था। सोहनी पट्टी, पांडेपट्टी, मदनगंज आदि को मिलाकर बक्सर मात्र 600 घरों वाले गाँवों का समूह था। यहाँ भोजपुर राजा के परिवार की एक शाखा एवं राजा के पुरोहित रीतुराज मिश्र, शाकद्वीपीय का निवास था। धार्मिक गतिवधियों के संचालित करनेवाले दशनामियों के दो मठ यहाँ थे, जिसमें पंद्रह साधु रहा करते थे और बीस छोटे-छोटे घर थे, जिसे मठिया कहा जाता था। बुकानन ने बक्सर नामकरण का मूल बाकासुर से माना है, जो द्वापर युग में हुआ था। बक्सर टीला के प्राचीन इतिहास के बारे में वह राज पुरोहित और गोपालशरण नामक बुद्धिजीवी से विचार-विमर्श कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह करूष देश के दैत्य या असुर का था, जिसे कृष्ण ने मारा था। बक्सर के पूजा-स्थल और प्राचीन गौरव गाथाओं की बुकानन चर्चा करता है। चरित्रवन, अहल्या स्थान, पातालपुरी, रामचौतरा का जिक्र वह बड़ी रोचकता से करता है। पातालपुरी को वह एक अनोखा स्थल मानता है, जो भूतल से 25 फीट नीचे था, जिसमें सुरंग मार्ग से प्रवेश किया जाता था। सुरंग का द्वार झोपड़ी से ढंका था। पातालपुरी के अंदर राम, विस्वामित्र और हनुमान की मूत्तियाँ थीं। रामचौतरा में एक मड़ई के अंदर उसने राम-सीता की मूर्ति होने की बात कही है। बक्सर उस जमाने में भी तीर्थ यात्रियों को आकर्षित करता था। गंगा स्नान और पवित्र स्थलों के दर्शन के लिए कार्त्तिक व माघ मासों में पाँच हजार लोग आते थे। मकर संक्राति के समय दस हजार और अगहन के पंचकोशी मेला में करीब आठ हजार लोग सम्मिलित होते थे।

---

4) संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृष्ट 232, प्रकाशन वर्ष 1954

5) An Account of District of Shahabad in 1812-13, page 65-71

अंग्रेजी यात्री बुकानन बक्सर को न शहर मानता है, न बाजार ही। वह इसे केवल धार्मिक स्थल मानता है, जहाँ साल में पाँच बार मेले लगते हैं। वह अपने विवरण में बताता है कि मिथक में वर्णित ताड़का के रक्त बहाव से बना ताड़का नाला उस समय दो मील लम्बा था, जिसे 'वलगा' कहा जाता था।

बक्सर के गंगा-तट को प्रदर्शित करने वाला एक विहंगम दृश्य बंगाली चित्रकार सीताराम द्वारा सन् 1814 में बनाये गये एक तैल चित्र से स्पष्ट होता है,[६] जिसमें बंगाल प्रेसिडेंसी के गर्वनर जेनरल लार्ड हेस्टिंग्स के कलकता से बनारस जाने के क्रम में बक्सर के पास गंगा के जल-मार्ग से गुजरने वाले जहाजी बेड़ों को तेजी से सरकते हुए दिखाया गया है। नावों के काफिले में वह सपरिवार, सहायकों और नौकरों के साथ यात्रा कर रहा है, जिसकी एक झलक देखने के लिए तट पर जनता की भीड़ खड़ी है। इस चित्र में गंगा की स्वच्छ निर्मल धारा में नावों के पाल और आकाश में छिटपुट छाये बादलों की प्रतिछवियाँ भी साफ दिखाई दे रही हैं। नदी की बहाव-धारा को चीरकर तैरते नावों से उत्पन्न जल की आकृतियाँ भी दिखाई दे रही हैं। गंगा की तीक्ष्ण धारों और अन्य अपरदनकारी शक्तियों से कटता-ढहता बक्सर टीला का उत्तरी भाग स्पष्ट रूप से इसमें परिलक्षित है। तट के कगार के पास खड़े घने वृक्ष और झाड़ियाँ तेज धूप में लोगों को शीतलता प्रदान करने के लिए पर्याप्त हैं। टीले की ढलान पर निर्मित दो आधुनिक किस्म के बंगले भी हैं, जो औपनिवेशिक गृह-निर्माण शैली के बने हैं। टीला के पीछे बक्सर किला की ईमारत साफ दिखाई दे रही है, जिसमें खिड़कियाँ और छत का आंशिक भाग भी नजर आता है। बायीं और कुछ खपरैल घर भी हैं और उसके पीछे विशाल मंदिर भी दिखाई दे रहा है, जिसके गुंबद पर फहराता बड़ा-सा पताका दूर से ही अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। चित्र में बायीं ओर तट पर ढलान बनाता एक चौड़ा रास्ता भी है, जिसका उपयोग जहाजों से माल ढुलाई के लिए होता होगा। टीला के दायीं ओर गंगा के भीतरी भाग तक रेत के उभार को दिखाया गया है, जो जलधारा को मोड़ती है। टीले के बायीं ओर ढलान पर से तेज धुआँ उठ रहा है, जो शायद उस जमाने में रामरेखा घाट के बायीं और शवों को जलाया जाता होगा। तट के कगार पर और वृक्षों की छाया में खड़ा अपार जनसमूह गवर्नर के साथ यात्रा कर रहे नावों को बड़ी तन्मयता से देख रहा है। इस चित्र में बक्सर टीला, रामरेखा घाट, रामेश्वर मंदिर साधुओं की मठिया, ताड़िका नाला का मुहाना, जहाज घाट आदि स्थल आदिम स्वरूप में दिखाई दे रहे हैं।

६) Lord Hasting's flotilla on river.google.com

इस चित्र के अवलोकन से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में बक्सर के गंगा-तट निर्मलता, सहजता और प्राकृतिक छवियों के प्रतिबिम्ब थे। यह जगह जहाजियों के लंगर, जल-मार्ग की आवा-जाही के साथ-साथ धार्मिक-सांस्कृतिक गतिविधियों का भी केन्द्र था। वर्तमान श्मशान घाट के स्थान पर शवों को रामरेखा घाट के पास ही जलाया जाता था। नावों की शोभा-यात्रा को देखने वाले दर्शकों की भीड़ यह साबित करती है कि अब से दो सौ साल पहले भी बक्सर में तमाशबीनों की संख्या कुछ कम नहीं थी।

अंग्रेजी चित्रकार जार्ज फ्रांसिस द्वारा सन् 1830 में बनाये गये एक अन्य तैल चित्र का भी अवलोकन कर 19वीं सदी के बक्सर को समझा जा सकता है।**७**

Part of Buxar fort, showing a shrine and Ghat below, with people bathing and drawing water from river; white george Francis (1830 AD)

इस चित्र में गंगा तट को दिखाया गया है, जिसमें औरतें पीने के लिए पानी घड़े में भर कर ले जा रही हैं और एक व्यक्ति कावर से पानी ढोने के लिए आ रहा है। कुछ लोग नदी में स्नान कर रहे हैं। पुराने टीले का भाग ढहता हुआ और तट का कटाव साफ दिखाई दे रहा है। इस चित्र से स्पष्ट है कि मुख्य घाटों पर किनारे में वर्तमान की तरह उस समय गहराई नहीं थी, बल्कि किनारा कुछ उथला था। तस्वीर में नदी में पड़ा रेत यह जाहिर करता है कि दो शतक पहले के उन वर्षों में गंगा स्नान सुरक्षित और जोखिमहीन था। चित्र में सामने और पीछे मंदिर दिखाई दे रहे हैं, जिसमें पड़े पुजारी स्नानार्थियों से पूजा करवाते थे। सामने के मंदिर के आगे खड़ा किये गये पलानी और किनारे गंगा-धार तक बनी सीढ़ी से स्पष्ट होता है कि गंगा तट पर यात्रियों को आराम करने और सुविधाओं का ख्याल रखा जाता था। तट की ढलान पर बैठे देशी नस्ल के दो बैल हमारी कृषि व्यवस्था के उस समय धूरी थे। इस चित्र में सामने दो मकान दिखाई देते हैं, जो छज्जों, छतियों, बालकनियों और खिड़कियों से भरे हैं और साथ में चारदीवारी भी बनी है। चारदीवारी का मुँह विशाल फाटक के रूप में नदी की ओर है, जो बंद अवस्था में है। जिसकी ओर पतवार खेता एक मल्लाह अपनी नाव लेकर जा रहा है। गंगा की रेत पर बिछी खटिया से एक व्यक्ति उठकर मुँह धोने या कुल्ला करने जल की धार की ओर बढ़ रहा है, जिधर कुछ गिद्ध पानी के बहाव के साथ आ रहे शवों के अधजले टुकड़ों की तलाश में मचल रहे हैं। रेत पर एक खोपड़ी, घड़ा, रस्सी और लकड़ी के टुकड़े

7) Binarghata.com/buxar

बिखरे या बिखराये गये हैं, जिसे देखकर लगता है कि दातून से मुँह धोता व्यक्ति कोई तांत्रिक है। तट से सटा एक पुराना ढहता जर्जर कुआँ भी है, जो वृक्षनुमा पौधों से आच्छादित है।

इस चित्र को देखकर यह बखूबी समझा जा सकता है कि पुरातन विश्वासों को लेकर आधुनिक विकास चिन्हों को तत्कालीन बक्सर कैसे अपना रहा है? ये ऊँचे महल और चारदीवारी से लगा फाटक उपनिवेशकालीन वाणिज्य व्यापार का केन्द्र प्रतीत हो रहा है। पुरातन और आधुनिकता के बीच नदी में रेत जैसे उभरे किसी तांत्रिक ठग की उपस्थिति से 11वीं सदी के बक्सर का चेहरा परिभाषित हो रहा है, परन्तु नदी धार से पेयजल ले जाने वाली औरतें और नहाने में तल्लीन लोगों की आस्थाओं का बक्सर विशेष मायने रखता है।

कैडस्ट्रल नक्शों के आधार पर भी बक्सर की प्राचीनतम वस्तुगत स्थितियों का व्यापक मूल्यांकन किया जा सकता है। डोमडेखा पोखर, पोखरी, महीपाल, पोखर रेआ, नौकाघर, धर्मशालायें, महावीर स्थान, रामेश्वर घाट, रामरेखा घाट, किला, होमकुंड, हनुमान चबूतरा आदि अनेक स्थलों का सुगमता से चिन्हाकन हो पाता है, जो उस जमाने में गंगातटीय बक्सर के प्रमुख स्थल थे। वृद्धो के कथनों और लोक कहावतों और लोकगीतों में भी बक्सर की गंगा का प्रचुरता में वर्णन मिलता है। एक मशहूर कहावत प्रचलित है- 'उपर से ठाट-बाट, नीचे रमरेखा घाट'। प्राचीन बक्सर का उल्लेख एक पुराने लोकगीत में हुआ है, जिससे बक्सर की चौहद्दी बतायी गई है-

उत्तर बहे गंगा के धारा
दखिन बहे ताड़िका नारा
पश्चिम किला के मैदान
पुरूब लागल नया बजरिया बा
कइसन ई नगरिया बा ना[८]

बक्सर क्षेत्र में प्रचलित भोजपुरी गीतों में गंगा की महत्ता प्रकट होती है-

पिया हो मैं तो आगम जानी
पुरूब दिशा जनि जरहऽ मोरे स्वामी
पुरूब के पातर पानी।। टेक।।
उत्तर दिशा वलु जो मेरे स्वामी
जहवाँ गंगा जल पानी
एक डूबकी मारत तरि जइब
तरि जइहें कुल परिवारी।।टेक।।
अबकी बार गंगा पार उतारऽ
सुरसरी नाँव तोहार।[९]

बक्सर का गंगा तटीय इलाका रामावतार के युग से पहले भी सिद्धाश्रम नामक तीर्थ के रूप मशहूर था। महात्मा वामन का आश्रम और विश्वामित्र की यज्ञभूमि यही थी। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में सिद्धाश्रम के महत्व और अवस्थिति के भरपूर विवरण 24वें सर्ग से लेकर 31वें सर्ग तक मिलतें हैं। ताड़का

8) श्री सुदर्शन पाण्डेय, उम्र 70 वर्ष, अहिरौली, बक्सर के निवासी, ने यह लोकगीत सुनाया।

9) भोजपुरी होरीगीत, कर्मेन्दु शिशिर, भोजपुरी अकादमी, पटना, पृष्ट 10, 103, प्रकाशन 1983 ई.

का राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध और ताड़िका वध का उल्लेख भी यही से प्राप्त होता है। बक्सर में राम के आगमन से जुड़े चार तीर्थ स्थल हैं- चैतरथ वन, रामरेखा घाट, ताड़का नाला और रामेश्वर नाथ। चैत्ररथवन में प्राचीन मंदिरेां के निशान और भूमिगत साधुओं की कुटिया की पहचान वहाँ के मूल निवासियों से होती है। चैत्ररथ वन पतित पावनी गंगा के दक्षिणी तट पर चार एकड़ भूमि में फैला है, जिसके टीले पर एक मंदिर है, जिसे राम चबूतरा कहा जाता है। यहाँ श्रीराम के चरण चिन्ह भी सुरक्षित है। रामरेखा घाट बक्सर का सबसे प्रमुख घाट है। कहा जाता है कि विश्वामित्र प्रतिदिन प्रातःकाल में तीस कोस चलकर बनारस गंगा स्नान के लिए जाते थे। एक बार राम ने इसकी वजह पूछी, तो उन्होंने कहा कि काशी नगरी में गंगा उत्तरायण बहती है, जहाँ का स्नान पुण्यदायी होता है। यह सुनकर राम ने धनुष की कोटि गंगा की धारा बदलकर उत्तराभिमुख कर दी और एक लकीर खींच दी, ताकि मुनिगण लकीर के भीतर ही यज्ञ कार्य करें, जिससे राक्षस कोई बाधा न डाल सकें, तभी से यह घाट राम रेखा घाट के नाम से विख्यात हुआ। रामरेखा घाट के तट पर राम द्वारा स्थापित शिवलिंग भी है, जिसे रामेश्वरनाथ भी कहा जाता है। कहा जाता है कि राम ने बालू से शिवलिंग बनाकर उन पर जल ढरकाना शुरू किया, तो बालू का शिवलिंग विखरने लगा, तो उन्होंने अपनी उंगलियों से उसे फिर व्यवस्थित किया। इस शिवलिंग में उंगली के निशान आज भी दिखाई देते हैं। ताड़का-बध के बाद लहू की धार बहने से फूटा नाला ही ताड़का नाला है, जो चरण धूलि के स्पर्श से पावन बन गया। अहिरौली का अल्हया स्नान राम लक्ष्मण के बक्सर आगमन की गाथा को गौरवान्वित करता है, जहाँ उस जमाने में पाषाण हो चुकी स्त्री संवेदना को, सामाजिक स्वीकृति, मर्यादा पुरूषोत्तम के स्पर्श मात्र से ही मिली थी।

बक्सर गंगा तट पर लगने वाले मेलों के कारण सर्वथा प्रसिद्ध रहा है। संवत्सर का पहला मेला मेष संक्रान्ति का मेला है, जिसे स्थानीय लोग सतुआनी मेला भी कहते हैं। गंगा-ठोरा के संगम पर बावन द्वादशी मेला और मार्गशीर्ष (अगहन) के कृष्ण पंचमी से नवमी तक चलने वाला पंचकोशी मेला बहुत प्रसिद्ध है। बावन द्वादशी के मेले में आये लोग संगम पर स्नान करके भगवान वामन का दर्शन-पूर्जन करते हैं, तो पंचकोशी मेला में मेलार्थी पाँच गाँवों की यात्रा पाँच दिनों में चलकर पूरी करते हैं और स्थानीय उत्पादित व्यंजनों का भोजन करते हैं। यह यात्रा की परंपरा राम के बक्सर आगमन और भ्रमण से जुड़ी हैं। यात्री प्रथम दिन अहिल्या स्थान अहिरौली में प्रवास करते हैं, जहाँ गंगा स्नान, अहिल्या दर्शन करते हुए पकवान खाते हैं। दूसरे दिन नदांव (नारद आश्रम) में चूड़ा-दही, तीसरे दिन भार्गवाश्रम (भभुअर) में साग-भात, चौथे दिन उद्दालकाश्रम (उनवांव) में सत्तू-मूली तथा पाँचवें दिन चरित्रवन में लिट्टी-चोखा खाते हैं। इस पंचकोशी परिक्रमा और संपन्न होते भोजन की सामूहिकता के प्रसंग में जनसामान्य में यह कथन प्रचलित है- *'माई बिसरी आ बाबू बिसरी, पंचकोसवा के लिटी-भंटा ना बिसरी।'* मेलों की कड़ी में श्रीराम विवाह महोत्सव मेला, मकर संक्राति मेला, माघी अमावस्या मेला, विजयादशमी मेला, कार्तिक पूर्णिमा का मेला, आर्द्रा नक्षत्र का मेला, सावन में सोमवारी मेला, गंगा दशहरा का मेला, देव दीपावली का मेला, लग्न में चौक और मुण्डन का मेला और तनाव का मेला भी प्रसिद्ध रहा है।

राजा भगीरथ द्वारा पुरखों के उद्धार तथा जगत् के कल्याण हेतु स्वर्ग से लोक लायी गई गंगा विश्वामित्र मुनि के युग में राम द्वारा उत्तराभिमुख की गई गंगा, बक्सर के गंगा तट और गंगा जल अब अपनी मौलिकता, स्वच्छता और सुरम्यता खो रहे हैं। करीब दस साल पहले एक कार्यक्रम में भोपाल से पधारे हिन्दी के साहित्यकार कमला प्रसाद ने अपने बक्सर-प्रवास के संस्मरण में लिखा है- 'सबसे पहले एक पुरानी इमारत देखी, जहाँ रामकथा की खलनायिका- ताड़का की मूर्ति बनी है। बताया गया कि यह विश्वामित्र

आश्रम है। इसी परिसर में आश्रम के प्रतीक ऋषि-मुनियों की मूत्तियाँ है। विश्वामित्र आश्रम के बारे में अनेक किंवदतियाँ सुनने को मिलीं। मालुम हुआ कि यहाँ इस ऋषि के नाम से स्कूल-कालेज तथा संस्थाएँ हैं। चलते-चलते हमलोग नवलखा मंदिर गए, जहाँ काफी लम्बा सोने का स्तम्भ है। यहाँ से कुछ दूरी पर गंगा किनारे नाथ बाबा का मंदिर है। मंदिर के अंदर मूर्त्तियाँ हैं। हमलोग मंदिर का शिल्प देखते रह गये। बहुत पुराना नहीं लगता यह मंदिर। गंगा की धारा की ओर गए तो दोनों किनारे गंदगी का ढेर नजर आया। पानी गंदला और उसमें तैरते छोटे-छोटे बच्चे। यहाँ प्रवाह बहुत तेज नहीं है। संभव है किसानों ने जगह-जगह खेत सींचने के लिए पंप लगा रखे हों, जिससे नदी की जलधारा क्षीण होती गयी हो। पानी कम होगा तो धारा में तेजी कैसे आयेगी। पाँच-छः नंगे बारह-तेरह वर्ष के लड़के कूद-कूदकर नहा रहे थे। उनके मुख का उल्लास देखने लायक था। ऐसी मटमैली गंगा को निहारकर कुफ्त हुआ। सोचा कि अब इन नदियों को देखने के बजाय इनके महत्त्व के बारे में पढ़ना ही अच्छा है। देखने से छवि खंडित होती है।'**१०** गोला-घाट से लेकर रामरेखा घाट तक गंगा किनारे बनाये गये पारगमन पुल से गुजरते हुए गंदगी और प्रदूषण की भयावहता को देखा जा सकता है।

गंगा-स्नान करनेवालों के लिए बक्सर में कई घाट हैं; यथा फूआ घाट, कालेज घाट, नाथ घाट, रामरेखाघाट, जहाज घाट, बंगला घाट, सती घाट, गोला घाट, महाराजाघाट और सिद्धनाथ घाट आदि। फूआ घाट पर दो सौ साल पहले एक विशाल मंदिर का लाहौरी ईंटों से निर्माण सूर्यपुरा के दीवान साहब ने कराया था, जिसमें काले पत्थरों की बनी राम-लक्ष्मण जानकी और गणेश की दुर्लभ मूतियाँ हैं, परन्तु समुचित देख-रेख और श्रद्धालुओं की उदासीनता के कारण पंचमंदिर नाम से जाना जानेवाला यह मंदिर और इसके दक्षिण में अवस्थित हनुमान जी का प्राचीन मंदिर भी नष्ट होने के कगार पर है।

वर्तमान दौर में जहाँ भौतिकवादी संसाधनों का विकास हुआ है, वहीं प्रकृति द्वारा प्रद्धत गंगा जल और गंगा-तट दूषित हुए हैं। गंगा-आरती और पूजा के फैशन के शोर में श्रद्धा-भावना अलक्षित रह जा रही है। पूर्व काल में बक्सर अल्प आबादी का, हरा-भरा, स्वच्छ और मस्तमौले निवासियों का शहर था। छिट-पुट जंगलों के बीच टूटी राहों और कंटीली पगडंडियों के सहारे बक्सर गंगा स्नान करने आनेवाले तीर्थयात्रियों के मन में पवित्रता के भाव होते थे। साथ ही, अंधविश्वास का आलम यह था कि बिना मुँह में कौर निगले कोई ताड़का नाला को लाँघ भी नहीं सकता था।

संपर्कः मैरा, पो.-सैसड़,
जिला- रोहतास

10) जिला स्थापना दिवस समारोह 2008, बक्सर स्मारिका, पृष्ठ-46

कोशी किनारे के लोकगीत

श्री मगनदेव नारायण सिंह
वरिष्ठ पत्रकार
एवं
अतिथि संपादक, धर्मायण

भारत के प्रसिद्ध जलवैज्ञानिक डा. दिनेश कुमार मिश्र ने अपनी पुस्तक 'दुई पाटन के बीच' में यह सिद्ध किया है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के काल से जब नदियों का दोहन आरम्भ हुआ, तबसे कोशी भयंकर बनती गयी, जो कभी माता थी, उसे बिहार का शोक बना दिया गया। इतना होने के बावजूद लोकपरम्परा में कोशी माता ही बनी रही। कोशीक्षेत्र के लोकगीतों में यह परम्परा आजतक विद्यमान है। यही है हमारी परम्परावाहिनी शक्ति। इस अक्षुण्ण लोकपरम्परा को यहाँ अपनी वाणी दे रहे हैं 'धर्मायण' के अतिथि सम्पादक श्री मगन देव नारायण सिंह।

कोशी नदी को बिहार का अभिशाप कहा जाता है। किन्तु, इसके किनारे की संस्कृति अत्यन्त श्रेष्ठ भी है। इसके किनारे, जहाँ विश्व प्रसिद्ध ऋषि-मुनियों ने तपस्या की, वहीं अनेक राजे-रजवारों और नबाबों का भी अभ्युदय हुआ है।

नदियाँ जलवाहिनी ही नहीं, जीवनदायिनी भी कहलाती हैं। सभी सभ्यता का विकास और विश्व के प्रमुख नगरों की उन्नति नदियों के किनारे ही हुई है। बिहार में जिन प्रमुख नदियों की चर्चा होती है, उनमें गंगा, सोन, फल्गु, कमला, बलान, बागमती, जीवछ, गंडक एवं कोशी प्रमुख है। इन नदियों का जितना धार्मिक महत्त्व है उतना ही सांस्कृतिक महत्त्व है। इन नदियों में स्नान कर जहाँ लोग स्वयं को पवित्र और पुण्य के भागी समझते हैं उतनी ही इसकी सांस्कृतिक विरासत को सहेजने की अपार कोशिश करते हैं। किन्तु, कोशी की विडम्बना है कि इसे शोक की नदी भी कहा जाता है। इसका मूल कारण वर्षाकाल में इसके अति वेगवती होना है, जिससे गाँव के गाँव उजड़ जाते हैं। फिर भी, उसके किनारे बसे लोग उससे प्रेम भी करते हैं। इसकी झलक उस क्षेत्र के लोकगीत में मिलती है। यहाँ मैं उन प्रेममयी लोक गीतों को उद्धृत करना चाहूँगा।

कोशी सात धाराओं में नेपाल से निकलती है और आगे चलती हुए बारी-बारी से मिलती हैं जहाँ व्यापक क्षेत्र में फैल जाती है। फिर, किनारे की मिट्टी की बड़े पैमाने पर कटाव करती हुई बहती है और कुरसेला के पास गंगा में मिल जाती है। नेपाल से निकलकर गंगा में समाहृत होने तक में सातो धाराएँ इस प्रकार अठखेलियाँ करती हुईं एक दूसरे को अपने भुजपाश में बाँध लेतीं हैं, मानों सातों बहने काफी दिनों से बिछुड़ने के पश्चात् मिली हों। इन सात धाराओं के कारण ही इन्हें सप्तकोशी भी कहा जाता है।

अब लोकगीतों के माध्यम से कोशी के प्रति लोगों के प्रेम और वियोग की झलक देखें-

मुट्ठी एक उड़वा गे कोसिका
अल्पा गे बायसवा गे
भुइयाँ लोटौ नामी-नामी केश
कोसी माय लोटै छौ गे केश ।।
केशवा सम्हारी कोशी
जुड़वा गे बनाओल गे

कोसी माइ खोपवा जे बनाओल गे
कोसी माइ उहे खोपवा में
कुहके जे मयूर।
उतरे राज से ऐलेय हे
राना रणपाल हो
कि कोसी पर भेलै हो निढ़ाल
कोसी के सुरतिया देख
राना भेलइ हो बेहाल।
कोन चाक पर तोरा गढ़लक
कोन रूप गढ़लक गे सोनार
अम्मा कोखिया हमर जनम भेल
सुरतिया देलक भगवान
हे कोसी मइया आव होऊ न सहाय।

इस गीत में कोशी को एक अति सुन्दर नवयौवना के रूप में चित्रित किया गया है, जिसकी कमर इतनी पतली कि एक मुटठी में समा जाय और केश इतने घने और लम्बे-लम्बे हैं कि उससे खूबसूरत जूड़ा बना डालें, जिसमें मयूर कुहुक रहा हो। उत्तर से आया एक अति सुन्दर युवक नवयौवना कोशी को देख उसके रूप-जाल पर मुग्ध हो जाता है और पूछता है कि किस कुम्भकार ने किस चाक पर इसे गढ़ा है और किस सोनार ने चाँदी के समान धवल रूप ढाला है। कोशी कहती है कि मैं तो अपनी माँ की कोख से जन्मी हूँ और मेरा रूप तो ईश्वर की देन है।

एक अन्य लोकगीत में कोसी को कुमारी कन्या माना गया है, जिसका प्रेमी भैंसा के समान बलिष्ठ है और उसकी मूंछें बहंगी के समान लम्बी हैं। लोकगीत को देखें -

भैंसा सनक मनुसवा गे बहनों
बज्जर सनक गांत
मोंछ बहिंया सन-मन लागे हे
अब त देतै कोसिका संग हमरो डुबाय
जान बच्चई के कोनो न उपाय।।
आनव हम अस्सी मन कोदारी
आ बेरासी मन के बेंट
आगू-आगू धसना देव खसाय।।

इस लोकगीत से ऐसा प्रतीत होता है कि रानू नामक एक युवक जो उत्तर दिशा से आया, वह कोसी के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसको पाने के लिये पागल हो जाता है और उसे नहीं पाकर कटाव करता हुआ, धसना गिराता हुआ, पूरे इलाका को नष्ट करता चला जाता है। इस गीत में नायक रानू के प्रेम की व्याकुलता दृष्टिगोचर होती है। क्षेत्र का विनाश कोशी का ताण्डव है, अथवा रानू के असफल प्रेम का पागलपन, यह तो पाठक निर्णय करें, किन्तु इतना सत्य है कि यह इकतरफा प्रेम, इस क्षेत्र को वर्षाऋतु में तहस-नहस कर देता है।

कोशी स्त्रियों द्वारा पूजी जाती है। वे व्रत रखती हैं और शाम को आरती की डाली सजाकर दीपदान करती हैं। एक लोकगीत का रसास्वादन करें :-

गोर तोरा लागै छियो हे डिहवार
कि कोशी माय के दियौ न मनाय
घड़ी एक चललौं हे कोशी माय।
पहर गेलै गे माय बीत
कर न कल्याण कोशी माय
जोड़ा पाठी देवैय चढ़ाय
हे कोशी माय होहु न सहाय।

ये हैं कोशी को प्रसन्न करने के कुछ लोकगीत।

अष्टावक्र गीता - हिंदी पद्यानुवाद

प्रथम प्रकरण

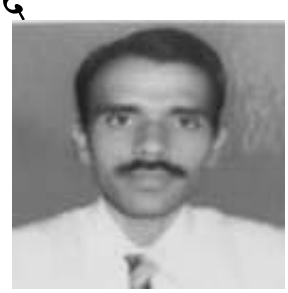

डॉ. उमाशंकर सिंह

जन्म : 07 फरवरी, 1971, कढ़ौना, गया। 'मगध विश्वविद्यालय, बोधगया'से हिंदी भाषा एवं साहित्य में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ एम.ए., पीएच. डी.,'योगाचार्य' एवं 'ज्योतिष-भूषण'। **कृतियाँ :** 'तीसरी आँख खुली है' तथा बिजली के फूल (प्रकाश्य) पत्र-पत्रिकाओं में कई शोध आलेख तथा कविताएँ प्रकाशित।

मिथिला के राजा जनक एवं महामुनि अष्टावक्र के संवाद के रूप में कथित 'अष्टावक्र गीता' में मुक्ति का एक ही मार्ग प्रदर्शित किया गया है, जो है ज्ञान का मार्ग। ये सूत्र ज्ञानोपलब्धि के, ज्ञानी के अनुभव के सूत्र हैं। स्वयं को केवल जानना है- ज्ञानदर्शी होना, बस। कोई आडम्बर नहीं, आयोजन नहीं, यातना नहीं, यत्न नहीं, बस, वही हो जाना, जो वह है। इसलिए इन सूत्रों की केवल एक ही व्याख्या हो सकती है, मत मतान्तर का कोई झमेला नहीं है, पाण्डित्य और पोंगापंथी की कोई गुंजाइश नहीं है। इस ग्रन्थ में ज्ञान, वैराग्य, मुक्ति और बुद्धत्व प्राप्त योगी की दशा का सविस्तर वर्णन है। यह विश्व धरोहर है और इससे समस्त भ्रमों का निवारण हो जाता है। इसका सुगम हिन्दी पद्यानुवाद यहाँ क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

जनक उवाच

कैसे होता प्राप्त ज्ञान है, कैसे मिलती मुक्ति।
कैसे वर वैराग्य जगेगा, कहो प्रभो वह उक्ति।1।

अष्टावक्र उवाच

यदि मुक्ति की इच्छा है तो विषम विषय विष त्यागो।
क्षमा, दया, संतोष, सहजता, सत्य सुधा युत जागो।2।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, भय, तमस, विषय विष बर्तन,
में अमरित का, जहर रूप में ही होता परिवर्तन।
विषय त्याग से ही उर निर्मल बनता, शुद्ध बनाता।
बिना पात्रता के कब बोलो, दिव्य ज्ञान टिक पाता।
ना जल, अनल, वायु, भू, नभ तू, चिन्मय होकर जानो।
मुक्ति हेतु खुद को इन सबका चित् साक्षी बन पहचानो।3।

पंचतत्त्व नश्वर, अनित्य हैं, नष्ट सभी हो जाते।
पंचतत्त्व से ही तन बनता, चेतन साक्षी बनाते।
भिन्न देह से आत्मभाव में, एकाग्र चित्त धारित है।
शांत, सुखी अविलम्ब बनोगे, बन्ध मुक्ति निश्चित है।4।

ना विप्रादि-वर्णादि तू, ना आश्रमी न गोचर।
निराकार, हो असंग, साक्षी सबके, सुखी बनो वर।5।

आत्म तत्त्व का वर्ण न होता, वह विप्रादि नहीं है।
ऐंद्रिक विषयों से भी उसका, वर संबंध नहीं है।
गृहस्थ संन्यासी वैरागी कुछ भी नहीं सही है।
साक्षी सबका उसे जानते, जो-जो सुखी वही है।
सुख-दुख धर्म-अधर्म न तेरे, मन के धर्म, विभो सुन।
कर्ता-भोक्ता नहीं, सर्वदा, सहज मुक्त ही हो, गुन।6।

अहंकारवश मानव खुद को, कर्ता-भोक्ता कहता।
देख दुःख में सुख, दुख पाता, इसी भ्रांति में रहता।
सुख-दुख, धर्म-अधर्म आदि से मुक्त मनुज जो होता।
अहंकार-भ्रम के बंधन से मुक्त, मुक्ति वह पाता।
मुक्त सर्वदा तुम हो, सबको एक देखनेवाला।
इतर देखना ही द्रष्टा को, बंधन अंध निराला।7।

भिन्न नहीं आत्मा-परमात्मा, अभिन्न एक वही है।
समस्त जगती वर अभिव्यक्ति, कण-कण वही सही है।
मैं कर्ता हूँ ऐसे काले सर्प अहं से दंशित।
'ना मैं कर्ता' विश्वासामृत, पीकर बनो सुगंधित।8।

सकल सृष्टि वर नियमों से ही शाश्वत बदल रही है।
एक मात्र कर्ता परमात्मा, विशिष्ट नियम वही है।

'एक शुद्ध अति बुद्ध रूप मैं' ऐसे अटल दहन से।
घन अज्ञान जलाकर हो जा शोकहीन भ्रम-वन से।9।

रज्जु सर्पवत्, कल्पित, भासित, जगत् सदासत् लगता।
परमानंद आनंद बोधमय सकल चराचर जगता।10।

मन में जैसा भाव, दृश्य सब वैसा ही दिखता है।
ज्ञान प्राप्त होते, कल्पित भय सहज चला जाता है।
मन में बैठा भूत-प्रेत ही बाहर में दिखता है।
क्यों रस्सी में साँप, चाँद में शीत-अनल दिखता है।
मुक्त मुक्ति-अभिमानी होता, बद्ध बद्ध-अभिमानी।
मति जैसी, गति वैसी होती, सत्य लोक की वाणी।11।

जो जैसा मानेगा, वैसा फल मिलना निश्चित है।
'मुक्ति' ज्ञान का चिन्तन फल है, बंध शूल चिन्तित है।
अक्रिय, निस्पृह, शांत, मुक्त, चित संग रहित व्यापक है।
पूर्ण एक है साक्षी आत्मा, भ्रम संसार चहक है।12।

भीतर भी औ बाहर भी ज्यों, व्यापक व्याप्त गगन है।
नहीं भिन्नता फिर भी लगती, भ्रम-कारण बंधन है।
अंतर-बाहर भाव-भ्रमों से मुक्त बनो, आभासी।
बोध रूप अद्वैत आत्मा, कर विचार वर न्यासी।13।

मनुज समझता जीव स्वयं को, आत्मा भिन्न समझता।
इतर लोक में ईश वास है, भ्रम कारण ही कहता।
यत्र-तत्र-सर्वत्र वही है, अचल-सचल, उज्ज्वलतम।
अहंकार में सत्य न लगता, सहज रूप सर्वोत्तम।
तन-अभिमानी, चिरबंधन से बंधे हुए सुन लो जन।
बोधरूप तू, आत्मज्ञान असि से, कर उसका छेदन।14।

क्रियारहित, निज तेज संग हो, निर्गत-संग, निरंजन।
अनुष्ठान करते समाधि का, यही सुनिश्चित बंधन।15।
तुझमें व्याप्त जगत् है सारा, ओत-प्रोत औ निर्मित।
क्षुद्र चित्त में मत उलझो तू, शुद्ध-बुद्धवर गर्वित।16।

रहित अपेक्षा, शीतल आशय, निर्विकार निर्भर तू।
गहरी मेधा, क्षोभ रहित बन, चित्त मात्र कर घर तू।17।

मूर्तिमान् को मिथ्या मानो, निश्चल अमूर्त को जानो।
फिर न जगत् में आना होगा, सार तत्त्व पहचानो।18।

ज्यों दर्पण में छवि प्रतिबिंबित, गोचर भीतर-बाहर।
त्यों हर तन में परमेश्वर है, संस्थित अंतर बाहर।19।

ज्यों घट के भीतर-बाहर रहता है आकाश सुमंडित।
त्यों सब भूतों में है ईश्वर, शाश्वत नियम अखंडित।20।।

संपर्क –
वर्तमान पता : L.I.G., 1/20,
हनुमाननगर, कंकड़बाग, पटना–800020
मो.: 9835283227, 9122774927

श्रेष्ठ कौन? वाणी या मन

शतपथ ब्राह्मण में एक स्थल (1.4.8.5-13) पर वाणी और मन की वार्ता आयी है, जो वाङ्-मनस्-संवाद के रूप में ख्यात है। एकबार दोनों आपस में अपनी श्रेष्ठता के लिए लड़ने लगे। मन ने कहा कि मैं जो जानती हूँ उसे ही तुम प्रकट करती हो, तुम मेरे पीछे कार्य करती हो, इसलिए मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ। वाणी ने कहा कि तुम जो कुछ जानती हो उसे मैं ही तो दूसरे को बतलाती हूँ, यदि मैं न कहूँ तो तुम्हारे जानने से कुछ नहीं होगा, अतः मैं श्रेष्ठ हूँ। इसपर निर्णय के लिए दोनों ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्मा ने अपना मन्तव्य दिया कि मन वाणी से श्रेष्ठ है। इस पर वाणी का गर्व गिर गया, जिससे अत्रि उत्पन्न हुए। आहत वाणी ने ब्रह्मा से कहा कि मैं आज से आपके लिए हवि का वहन नहीं करूँगी। उसी दिन से यज्ञ में सभी देवों के लिए वाणी अर्थात् मन्त्र के द्वारा हवन किया जाता है, किन्तु ब्रह्मा के लिए मन-ही-मन आहुति दी जाती है।

यज्ञ का आधार है मन्त्र-शक्ति

श्री अशोक कुमार मिश्र

भारतीय परम्परा में शब्द नित्य है, ब्रह्म है, उसका कभी विनाश नहीं होता है। शुभ शब्द परिवेश में फैलकर प्रकृति का पोषण करता है किन्तु अशुभ शब्द उसका विनाश करता है। महाभाष्यकार पतंजलि ने भी इस बात का संकेत किया है कि दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाहुः। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्। इस प्रकार शब्दस्वरूप मन्त्र अपनी शक्ति से यज्ञ के उद्देश्य को पूर्ण करने में समर्थ होता है। यज्ञ में सामग्री के विकल्प हो सकते हैं, किन्तु मन्त्र के विकल्प नहीं हो सकते हैं। यहाँ मन्त्र की इसी महिमा का बखान किया गया है।

यज्ञ में प्रयुक्त, अध्वर्यु होता, याजकगण एवं कर्मकाण्डों का जितना महत्त्व है उससे कहीं अधिक महत्त्व यज्ञों में उच्चरित मन्त्रों का है। वेद-वर्णित मन्त्र-सूक्त एक खास क्रम में गाए जाते हैं और वांछित परिणाम प्राप्त किए जाते हैं। यज्ञों में सामर्थ्य शब्दशक्ति से पैदा की जाती है जो विज्ञान भी प्रमाणित करता है। विज्ञान मानता है कि कम्पन से ध्वनि पैदा होती है जिसके लिए माध्यम की आवश्यकता होता है निर्वात में ध्वनि का संचरण संभव नहीं है। ठोस, द्रव एवं गैस (हवा) में ध्वनि की गति भिन्न-भिन्न होती है। लौह में ध्वनि का वेग 5000 मीटर/सेकेंड द्रव (जल) में 1400 मीटर/से. एवं गैस (हवा) में 330 मीटर/सेकेंड लगभग होता है। शब्द, धन, द्रव एवं हवा में चक्रमण करता है जिसे तरंग कहते हैं। शब्द से कार्य विधान मिलता है। ऋचा कहती है-

देवीं वाचमजनयन्त देवास्ताँ
विश्वरूपा पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥

अर्थात् वाक् देवी है, विश्वरूपा भी है। कार्यरूप में तो देवों के द्वारा उत्पन्न की गयी है। पर वाक् देवों की जननी भी है। अतः देवता मन्त्रस्वरूप ही है। धेनुरुपिणी वाक् से हम जीते हैं, उसीको हम बोलते और समझते हैं।

जो शब्द श्रव्य हैं तथा वाच्य हैं वह कार्य शब्द है, वैखरी शब्द है। जो शब्द सूक्ष्म हैं वह पश्यन्ती हैं। जो ज्ञेय है वही परावाक् हैं। अर्थात् वाक्-शक्ति, इच्छा शक्ति का रूप है। वाक् ही इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति है। तप से हमें सूक्ष्म शब्द की गति मिलती है और हमें अन्तर्दर्शन होता है। हम जिस श्रद्धा और उद्देश्य से अन्तर्दर्शन करते हैं उसी अनुरूप हमारी बुद्धि होती है। और इन क्रियाओं को मन्त्र कहा जाता है।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती
यज्ञं वष्टु धियावसु।

वाक् हृदयस्पर्शी होती है। यह स्पर्शानुभव देती है; रूपानुभव देती है। मन्त्रों का रूपानुभव ही देवता का साक्षात्कार है। रूपानुभव के द्वारा रसानुभव व गन्धानुभव वाक् ही कराती है। अतएव, वाक् बहुरूपिणी है, विश्वरुपिणी है।

मन्त्र, अक्षरात्मक, पदात्मक तथा वाक्यात्मक होते हैं। पदरूप मन्त्र छन्दोबद्ध होते हैं। छन्द में नाद की विशेषता होती है। जहाँ पद, वाक्य प्रभाव नहीं डाल पाते हैं, वहाँ केवल नाद ही असर डालते हैं। वैदिक धर्म में ही नहीं, दूसरे भारतीय धर्मों में भी छन्द की महत्ता है। जैन लोग मन्त्रों से अभिषेक करते हैं, बौद्ध मन्त्रों से तारा की उपासना करते हैं। मुसलमानों का मानना है कि कुरान के स्वर-वाचन बड़े महत्वपूर्ण हैं।

यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाले सभी तत्त्वों में मन्त्र की शक्ति सर्वोपरि है। इसलिए यज्ञ में मन्त्रों का

प्रयोग पूर्ण सावधानी से किया जाना उचित है। यज्ञ में जो सन्निहित है उसका मुख्य आधार मन्त्र-शक्ति है। मन्त्रों में चार प्रकार की शक्ति होती है-

(1) प्रामाण्य शक्ति
(2) फल-प्रदायिनी शक्ति
(3) बहुलीकरण शक्ति एवं
(4) अध्यात्म शक्ति।

वेद मन्त्रों के संग्रह है। मन्त्र-निसक्त में नियम आनुपूर्वी वाले तथा नियम पद प्रयोग परिपाटी बाले भी कहे जाते हैं।

मन्त्र-शक्ति का विस्तारीकरण करने के लिए एम्पलीफायर ट्रान्समीटर दोनों का काम यज्ञाग्नि के द्वारा सम्पन्न होता है। परिष्कृत वाणी से उत्पन्न मन्त्र शक्ति इच्छित व्यक्ति तक मिसाइल मनिन्द प्रेषित किया जा सकता है।

महर्षि जैमिनि की पूर्व मीमांसा के अनुसार मन्त्रों में जो अर्थ-शिक्षा, संबोधन, आदेश सन्निहित है, जिनके आधार पर मानव को अपने कर्तव्य का ज्ञान होता है और कर्तव्य की प्रेरणा मिलती है, वह उसकी प्रामाण्य शक्ति है।

कुश, हवि, चरु, आज्य, कुंड, समिधि, पात्र, पीठ आदि को अभिमंत्रित करके उसको सूक्ष्म प्राण से अभिप्रमाणित करने का विधान मन्त्रोचार, ऋत्विजों को न्यासादि से मन्त्रावधारित करना एवं अमुक क्रिया पद्धतियों द्वारा अमुक आयोजन का विधि-विधान मन्त्र की फल प्रदायिनी शक्ति से संबंधित है जो मन्त्र की दूसरी शक्ति है।

मन्त्र की तीसरी शक्ति है बहुलीकरण शक्ति। देवपूजन में जरा-सा चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य आदि चढ़ाए जाते हैं और हवन में दो पारवों पर रखकर जरा-सी हवि देवता के लिए डाली जाती है। प्रश्न उठता है- विशाल देवों हेतु अल्प पूजा-सामग्री। कैसे होगी तृप्ति? और ऐसे प्रश्नों का समाधान बहुलीकरण शक्ति से ही प्राप्त होता है। जिस प्रकार चम्मच-भर परमाणु प्रचंड विस्फोट के लिए प्रर्याप्त होता है, उसी प्रकार अत्यल्प मधुर सुस्वादु हवि देवताओं को अमृत-सदृश तृप्ति प्रदान करती है।

मन्त्र की चौथी शक्ति अध्यात्मता है, जो किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा विशेष स्थान पर, विशेष उपकरणों से उत्पन्न होती है। ऋषि विश्वामित्र ने अद्‌भुत समर्पण के साथ गायत्रीतत्त्व की असाधारण उपासना की और परिणामतः वे गायत्री के मन्त्र-द्रष्टा बने। विशेष साधन से किसी भू-खंड पर पूर्ण समर्पण एवं श्रद्धा से मन्त्र-साधना भू-खंड को असधारण रूप से प्रभावित करती है।

वेदों में मन्त्र निहित शक्ति का ध्यान रखते हुए, वांछित प्रयोजन में वांछित मन्त्रों का उपयोग करने का विधान था। प्राचीन काल में ऐसा होता भी था। राजा दशरथ के गुरु-श्रेष्ठ वसिष्ठ उच्च कोटि के वेदज्ञ थे, तथापि पुत्रेष्टि-यज्ञ के दक्ष शृङ्गी ऋषि को वांछित यज्ञ की जिम्मेदारी सौंपी जाती थी। जो विद्वान् जिस मन्त्र का अधिकारी बनें, वे प्रतिदिन निष्ठापूर्वक उन मन्त्रों को अपने अन्दर जाग्रत रखने के लिए पाठ की उपासना का क्रम जारी रखें।

मान्त्रिकों को ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करना आवश्यक है। महाभारत में एक कथा आती है, जब अश्वत्थामा पाण्डवों को नष्ट करने के लिए मन्त्र चालित 'संधान अस्त्र' का प्रयोग करने लगा तब अर्जुन ने उसकी शांति के लिए अन्य दिव्य अस्त्र छोड़ा था। उन अस्त्रों के टकराव से प्रज्वलित होने वाली ज्वाला से सम्पूर्ण विश्व के विनाश की आशंका उत्पन्न हो गयी थी, तब वेदव्यास ने दोनों अस्त्रों से पैदा हुई ज्वाला के शमन हेतु अश्वत्थामा और अर्जुन से अपने-अपने अस्त्रों के शमन की ईच्छा व्यक्त की। अर्जुन ऐसा करने में सफल रहे, क्योंकि वे सात्विक थे पर अश्वत्थामा ऐसा करने में असफल रहा, क्योंकि वह असात्विक था। अतः मन्त्र-आराधना के दौरान इन्द्रिय-निग्रह अत्यन्त आवश्यक है। मन्त्र-शक्ति को समझना, उसके रहस्यों का साक्षात्कार करना और विशेष-साधनों द्वार उसे सिद्ध करना, मन्त्र-साधकों का परम लक्ष्य होता है। यज्ञ में मन्त्रोच्चार आवश्यक अंग है। अतः, मन्त्र-शक्ति पर विचार भी आवश्यक है। ऐसी मान्यता है कि इसाई जन, रोगी की शैय्या के समीप कुछ पाठ करते हैं और नीरोग भी कर लेते हैं, जो मन्त्र-शक्ति का प्रभाव है। (शेष पृ. 47 पर)

पाटलिपुत्र की ऐतिहासिक विरासत

श्री ओम प्रकाश सिन्हा

(गतांक से आगे-)

1857 के देशव्यापी क्रांति के समय पटना में आंदोलन की बागडोर क्रांतिकारी पीर अली के हाथ में थी। पटना सिटी में वे जिल्दसाजी और पुस्तक बिक्री का काम करते थे। 1 जुलाई, 1857 को क्रांतिकारी युवकों ने पादरी की हवेली स्थित रोम चर्च और अफीम कोठी में, जो अब गर्वमेंट प्रेस, गुलजारबाग है, के समीप प्रोस्टेट विलियम टेलर और मौलवी बक्श मजिस्ट्रेट रहा करते थे। 5 जुलाई को पीर अली को बक्श ने 3 घंटे के अंदर फ्रेजर रोड (यहाँ उन दिनों आम के बगीचे थे) पर फाँसी पर (पेड़ से लटकाकर) लटका दिया। 1863 में बिहार का पहला कॉलेज (पटना कॉलेज) खुला, जहाँ कालांतर में डा. सच्चिदानंद सिन्हा, सर सुल्तान अहमद, बिहार के प्रथम मुख्यमन्त्री श्रीकृष्ण सिंह, जय प्रकाश नारायण ने शिक्षा पायी। श्रीकृष्ण सिंह पटना कॉलेज के 'मिंटो हॉस्टल' में रहकर पढ़ते थे। बाद में वे पटना विश्वविद्यालय में सीनेट के सदस्य भी रहे।

1921 में दीघा में **'सदाकत आश्रम'** की स्थापना मजहरूल हक ने किया। महजहरुल हक यहाँ से 'मदरलैंड' नामक अखबार भी निकालते थे। उन दिनों पटना-गया रोड पर एक किराये के मकान लेकर विद्यापीठ खोला गया। 6 फरवरी 1921 को राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने इसका उद्घाटन किया था। मजहरूल हक इसके कुलपति (चांसलर) हुए और ब्रज किशोर प्रसाद उप कुलपति बने। राजेन्द्र बाबू इसके प्राचार्य हुए और बदरीनाथ वर्मा के साथ कई शिक्षक रखे गये। विद्यार्थियों में थे- जय प्रकाश नारायण, सिंहेश्वर प्रसाद एवं विश्वेश्वर प्रसाद, अनुग्रह बाबू आदि। वे यदा-कदा उन दिनों हाईकोर्ट जाते, लेकिन काम विद्यापीठ में ही करते थे। हाईकोर्ट पटना की स्थापना 1926 में हुई थी। राष्ट्रपिता गाँधी ने सत्याग्रह का श्रीगणेश सामान्य काम बंद करने से शुरू किया था।

1919 के अप्रैल महीना में जो 'पटना हड़ताल' हुई, वैसी हड़ताल आज तक शायद नहीं हो पाई। उन दिनों पटना शहर में सभी दूकानें बंद रहीं, सवारियों का परिचालन ठप था। यही नहीं, गाँवों में उस दिन लोगों ने बैलगाड़ी और हल जोतना तक बन्द कर दिया था। जुलूस भी इतना लम्बा निकला कि गुलजारबाग से लेकर शहर में किले तक आदमी ही आदमी दिखाई देता था। सबसे आगे हसन इमाम साहब थे, जो नंगे पाँव चल रहे थे। उनके पीछे डा. राजेन्द्र प्रसाद और अन्य सत्याग्रही थे। भीड़ इतनी अधिक थी कि किले में आ सकते थे, इसलिए सभा गंगा की रेत पर हुई। गाँधी के सत्याग्रह के दौरान पटना में नमक बनाने के लिए 'बाकरगंज' के सत्याग्रही जब सुल्तानगंज पहुँचे, तो शहर के प्रहरियों ने उन्हें रोका। दिनभर सत्याग्रही उसी जगह जमे रहे; रात सड़क पर लेटकर बितायी। घुड़सवार अंग्रेज अफसर व मजिस्ट्रेट ने राजेन्द्र बाबू को भीड़ हटाने को कहा। उन्होंने इंकार कर दिया। पटना सचिवालय के अहाते में शहीद स्मारक में आज जो लोहे की छड़ों और दीवारों का घेरा है, वह 1942 में नहीं था। वह 1979 के जे. पी. आंदोलन के समय इसके बचाव के लिए बनाया गया था। 1942 में विधान सभा के फाटक तक खुला मैदान था। 10 अगस्त, 1942 को पटना के सदाकत आश्रम, कदमकुँआ स्थित किसान सभा कार्यालय में सरकार ने उन दिनों ताला लगा दिया था। सदाकत आश्रम और बिहार विद्यापीठ को खाली करने का आदेश दिया गया। 11 अगस्त को

सर्वप्रथम प्रदर्शनकारियों द्वारा पटना मेडिकल कॉलेज भवन, पटना सिटी कचहरी पर तिरंगा फहराया गया था। 24 दिसम्बर 1945 को जब जवाहरलाल नेहरू पटना पहुँचे तब अनुग्रह नारायण सिंह के साथ हजारों लोगों ने उनका स्वागत किया था। जहाँ अभी बिहार विद्यालय परीक्षा समिति का कार्यालय और उसकी बगल में सिन्हा लाइब्रेरी हैं, वहाँ पहले डा. सच्चिदानंद सिन्हा का घर हुआ करता था। वे (सिन्हा) उसी में रहते थे। जहाँ आज गाँधी-संग्रहालय' है वह पहले दीपनारायण सिंह का घर था। जहाँ अब अनुग्रह नारायण संस्थान है, वह डा. सैयद महमूद की कोठी हुआ करती थी जिसमें 1945 दिसम्बर में गाँधीजी ठहरे थे। स्वतन्त्रता आंदोलन में महती भूमिका निभाने वाले 90 वर्षीय रामजतन सिन्हा ने कहा कि मैं 1923 में पैदा हुआ, लेकिन सौभाग्य कि 1940 में पटना के गाँधी मैदान में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की प्रार्थना सभा में आता था। यह दिसम्बर 1945 की बात है।

1921 में बिहार को पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। 7 फरवरी 1921 को बिहार विधानसभा के भवन का उद्घाटन लार्ड सिन्हा ने किया। बिहार विधानसभा का अपना इतिहास है जो रोचक एवं ज्ञानवर्धक रहा है। सबसे दिलचस्प बात यह है कि विधानसभा में स्पीकर कांग्रेस में पटना में विदेशी मेहमानों का आगन उन दिनों भी हुआ करता था। 1982 में हाउस ऑफ कामर्स के स्पीकर बिहार विधानसभा में आए थे। फिर 1983 में कामन वेल्थ के चेयरमैन के रूप में कनाज के मन्त्री सर ओटेन हेमर और कामन वेल्थ के सचिव के रूप में लंदन के सर रौट बडर वेल्प यहां स्पीकर कॉफ्रेंस में आए थे। पटना की सड़के पुराने शासकों एवं महापुरुषों के नाम से हुआ करती थीं। एक जमाने में मैथडोनल बिहार के गर्वनर हुआ करते थे उनके नाम पर मैथडोनल रोड हुआ। बिहार के प्रथम गवर्नर महाराष्ट्र के मराठी थे- अणे साहब। उनके नाम पर अभी भी अणे मार्ग पटना में है। पटना में टेलर रोड अब श्रीकृष्ण सिंह पथ हो गया है। 1857 में बिहार के गवर्नर थे टेलर। राजभवन वाले मार्ग का नाम पहले किंग्स जार्ज एवन्यू हुआ करता था अब देशरत्न मार्ग हो गया है। हार्डिंग भी गवर्नर थे उनके नाम पर हार्डिंग रोड अब क्रांति मार्ग हो गया है। गार्डिनर रोड अब वीरचंद्र पटेल पथ हो गया है। सर्कुलर रोड अब कौटिल्य मार्ग हो गया है। मैल्कोल फेजर के नाम पर ही फ्रेजर रोड या वह अब मजहजल हक पथ हो गया है। भले ही कोई आज भी बेली रोड बोले लेकिन 'स्टूअर्ड बेली' के नाम पर बेली रोड अब जवाहरलाल नेहरू मार्ग हो गया है। वह गुजर गया जमाना जब पटना साहिब बिहार एवं समस्त भारत के राजनीति से जुड़े लोगों के हृदय में साहित्य का वास होता था, बाल गंगाधर तिलक, राष्ट्रपिता गांधी, जवाहरलाल नेहरू, पंडित भजनलाल चतुर्वेदी, बाबू पुरुषोत्तम दास रंजन, डा. सम्पूणानंद, रामकृष्ण शर्मा, नवीन, गणेश शंकर विद्यार्थी, पंडित कमलापति त्रिपाठी कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी, डा. लक्ष्मी नारायण सुंधांशु (पूर्व विधानसभा अध्यक्ष, बिहार), आचार्य नरेन्द्र देव सहित हरिवंश राय बच्चन, आचार्य नरेन्द्र देव सहित कई ऐसी हस्तियाँ थीं, जिन्होंने राजनीति की धूप देखी तो साहित्य की छांव में विश्राम भी किया यानी राजनीति में रहते हुए साहित्य साधना में तल्लीन होकर लेखन से भी जुड़े रहे। जब सचिदानंद सिन्हा पटना विश्वविद्यालय के कुलपति थे तब 1945 में विश्वविद्यालय का सिल्वर जुबली मनाया गया जिस कार्यक्रम में हरविंश राय बच्चन, मैथिलीशरण गुरु समेत कई दूसरे प्रदेशों के कवि दूसरे प्रदेशों से यहाँ पधारे थे।

ओम प्रकाश सिन्हा
वरिष्ठ पत्रकार

तुलसी के मानवतावाद की प्रासंगिकता

डा० आशुतोष मिश्र

भारतीय संस्कृति की जीवंत आत्मा 'श्री रामचरितमानस' अपनी अद्‌भुत कलात्मक वैशिष्ट्य एवं कालजयी व्यक्तित्व के कारण सम्पूर्ण भूमण्डल में एक उत्प्रेरक उदाहरण बना हुआ है। जीवनमूल्यों की पुनर्स्थापना का जैसा सात्विक और साहसिक प्रयास 'मानस' के माध्यम से गोस्वामीजी ने किया है वह आज भी मानस समुदाय को मानवता का मार्गदर्शन करा रहा है।

तुलसी की अवतारणा हमारे समाज में उस समय हुई थी, जब अनेक वादों, सिद्धान्तों, सम्प्रदायों और विचारों के परस्पर टकराव से हमारा समाज विश्रृंखल और दिशाहीन हो चुका था। तद्‌युगीन परिस्थितियों से सम्बद्ध डॉ० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र' ने अपनी धारणा इन शब्दों में प्रस्तुत की है, ''जब समाज के वैचारिक गगन में अज्ञान की तमिस्रा छा जाने से अनेक मत-मतान्तर कृमि-कीटों की भाँति उत्पन्न होकर संघर्षरत हो जाते हैं, जिनसे जीवन में विश्रृंखलता आ जाती है, अव्यवस्था का साम्राज्य छा जाता है तथा विरोध-दानव का सर्वत्र ताण्डव दृष्टिगोचर होने लगता है एवं धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक मानों में शैथिल्य आ जाता है, तब विभु की विशिष्ट विभूति को लेकर ऐसे प्रकाशपुंज का अवतरण होता है जो भावना से विचारों को गुम्फित कर विश्वास के आधार पर ज्ञान की उस ज्योति को विकीर्ण करता है, जिससे जीवन में संतुलन, व्यवस्था तथा सहयोग उत्पन्न हो जाता है एवं धर्म, संस्कृति और नीति का सुष्ठु स्वरूप दिखाई देने लगता है।''(तुलसी : साहित्य और साधना पृ०- 189)

आज मानव-मूल्यों में जो शैथिल्य आया है, वह मानव समुदाय की दिशाहीन सोच के कारण। समाज में बढ़ते जघन्य अपराध, पर्यावरण असंतुलन और दिशाहीन विचारों ने आज हमारे समाज को उन्हीं परिस्थितियों के बीच खड़ा कर दिया है, जो सदियों पूर्व मुगलकाल में था। अपनी उत्प्रेरक एवं ख्यातिलब्ध रचना 'रामचरितमानस' की अवतारणा कर गोस्वामीजी ने जिस प्रकार मानवता और भारतीय संस्कृति की रक्षा की थी, आज उन्हीं वैचारिक मूल्यों को पुनःस्थापित और पुनरुज्जीवित करने का समय आ गया है।

गोस्वामीजी ने 'राम' जैसे महानायक की अवतारणा कर एक ऐसे महानायक की परिकल्पना की है, जो स्वयं तो आत्मविश्वास से लवरेज है ही, साथ ही साथ कुण्ठित, हताश और निराश हो चुके लोगों में आशा का संचार भी कर देता है। तद्‌युगीन परिस्थितियों में सारे जीवन मूल्यों का बाहरी शासकों द्वारा क्षरण कर दिया गया था, सैकड़ों वर्षो से उनका मान-मर्दन हो रहा था। अतः ऐसे विकट समय में भारतीय जनता हतोत्साहित हो चुकी थी। साहस और उत्साह के अभाव में किसी मानदण्डों को जीवित नहीं किया जा सकता है। राम के मर्यादित चरित्र के माध्यम से तुलसीदासजी ने तत्कालीन समाज में साहस और शक्ति का नव्य संचार कर दिया तथा प्रकारान्तर से यह संदेश प्रेषित किया कि कभी राम जैसा मर्यादित पुरुष अपने घर से अकेले चला और अनेक प्रकार के संघर्ष को झेलता हुआ मार्ग में सैन्य संगठन कर शत्रु के देश में जाकर उसके बन्धु-बान्धवों सहित उसे पराजित कर समाजिक एवं राष्ट्रीय मूल्य

को सुरक्षित किया (तुम आज सख्या में करोड़ों हो और तुम्हारी मान-मर्यादाओं को खंडित करता हुआ एक विदेशी तुम पर शासन कर रहा है और तुम आपस में विखंडित होकर अपने-अपने स्वाभिमान की रक्षा करना चाहते हो। पहले तुमलोग एकता के सूत्र में बँध जाओ और एकजुट होकर बाह्य आक्रांताओं का सामना करो, फिर उन्हें पराजित कर एक स्वस्थ एवं स्वच्छ राष्ट्रमूल्य की स्थापना करो। तुलसी की दृष्टि में राजा केवल शासक और स्वामी नहीं होता अपितु वह संरक्षक और प्रजापालक होता है। शासक में पौधों के प्रति माली-जैसा दायित्व, सहानुभूति एवं समर्पण होना चाहिए। उन्होंने लिखा भी है-

माली भानु किसान सम, नीति निपुन नर पाल।
प्रजा भाग बस होहिंगे, कबहुँ-कबहुँ कलि-काल॥

दोहावली - 507

अर्थात् माली जिस प्रकार उद्यान का संरक्षण एवं पालन करता है, उसी प्रकार राजा को भी प्रजा का संरक्षक एवं पालक होना चाहिए। जिस प्रकार माली जीव-जन्तुओं से उद्यान की रक्षा करता है, अन्दर के घास-फूस को उखाड़कर फेंक देता है, मुरझाए हुए पौधों को सींचता है तथा क्षीण पौधों को लकड़ी आदि का सहारा देकर बढ़ाता है, उसी प्रकार राजा बाह्यशत्रुओं से देश की रक्षा करता है, आन्तरिक घातक तत्त्वों का विनाश करता है, दीन-दुर्बलों को समृद्ध बनाता है तथा असहाय और असमर्थों की सहायता करता है। सूर्य अपनी ऊष्मा से जीवन-दान देता है और प्रकाश विकीर्ण करता है, उसी प्रकार राजा अपने प्रभाव-प्रताप से प्रजा में आत्मविश्वास जगाता है। एक शासक में इन गुणों की परिकल्पना से ही समाज में मूल्यों की स्थापना संभव है।

वर्तमान स्थिति में भी गोस्वामीजी द्वारा विरचित 'रामचरितमानस' या अन्य रचनाओं में स्थापित मानवतावाद हमारा मार्गदर्शन कर सकता है। वे आदर्श-मूल्य भारतीय संस्कृति के अमिट धरोहर हैं। अनमोल परम्पराएँ विरासत के रूप में जीवन्त दस्तावेज होती हैं, जो समय-समय पर हमारा मार्गदर्शन करती हैं। जीवन के समस्त मूल्य मानव-मूल्य में हीं संघटित हो जाते हैं। सच है, मानवता तो परहित में निवास करती है। तुलसीदासजी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है-

परहित बस जिन्ह के मन माहीं।
तिनके जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

संत हृदय गोस्वामीजी का सम्पूर्ण साहित्य मानवतावाद के सशक्त स्तम्भ पर टिका है। मानवतावादी विचारधारा दया, करुणा एवं सहानुभूति से अभिभूत होती हुई जीवन के सकारात्मक पक्ष को उद्घाटित करती है। ऐसी सकारात्मकता का उत्स नवनीत-हृदय में हीं संभव है। सम्पूर्ण संसार को 'सियाराममय' के रूप में देखनेवाले गोस्वामीजी एक संत समाज की परिकल्पना करते हुए लिखते हैं-

संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन्ह पर कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवहिं नवनीता।
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

रामचरितमानस- 7. 124. 4

तुलसी की मानवता परदुखकातरता में है, इसलिए वे 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई' और 'निज दुःख गिरि सम रज करि जाना।मित्रक दुःख रज मेरु समाना'(रामचरितमानस- 4. 8. 1) के माध्यम से जीवन-मूल्यों को ही पुनःस्थापित करते हैं। आज मित्रता का वह मूल्य तुच्छ स्वार्थपरता की वेदी पर बलि चढ़ चुका है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में मानव-मूल्यों को अपनाए बिना वैश्विक स्थिरता की परिकल्पना संदिग्ध ही रहेगी। राष्ट्रमण्डल खेलों का आयोजन समस्त भूमण्डल को एकमंच पर लाने का एक सार्थक प्रयास हो सकता है, परन्तु परस्पर एकता और अखण्डता के लिए कुछ व्यापक मानदण्डों को स्थापित करना होगा। जिसका प्रयोग कभी जर्मनी के एकीकरण के लिए विस्मार्क ने, संयुक्त सोवियत रूस के लिए कार्ल मार्क्स ने तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से प्ररित होकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने

'रामचरितमानस' में समन्वय साधना द्वारा जिन मानवीय मूल्यों को स्थापित किया है वह तत्कालीन परिस्थितियों के लिए उपादेय है।

तुलसी का समन्वयवाद ही मानवतावाद का आधार है। विदेशी शासकों के कट्टरता पूर्ण रवैये ने भारतीय जनमानस को कुण्ठित कर दिया था, उनकी चेतना लुप्त हो गई थी । तुलसीदासजी ने अत्यंत गौर से निश्चेष्ट हो रही इस सामाजिक चेतना पर दृष्टि डाली और लोकमंगल की कामना से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विविध मूल्यों को स्थापित किया। यही लोकमांगलिकता उनका मानववाद है। तुलसी की इसी सामाजिक उत्प्रेरणा ने उन्हें लोकनायक बना दिया। पाश्चात्त्य समीक्षक ग्रियर्सन ने भी इसे स्वीकार करते हुए लिखा है- 'बुद्धदेव के उपरान्त भारत में सबसे बड़े लोकनायक तुलसीदास थे।'

तुलसी ने दो विरोधी विचारधाराओं के बीच एक नया वैचारिक मार्ग सुझाया, जो रचनात्मक और सकारात्मक था, तथा जिसमें नैतिकता, परोपकारिता, सहिष्णुता, लोकमांगलिकता एवं सहजता-जैसे भाव आपूरित थे। ऐसे ही वैचारिक मूल्यों से आवेष्टित नीतियाँ समन्वयवाद कहलाती हैं। गोस्वामीजी ने धर्म, शिक्षा, राजनीति, भाषा आदि विविध क्षेत्रों में समन्वय कर एक वैचारिक मूल्य निर्धारित किया। 'सगुण-निर्गुण' के क्षेत्र में मौलिक विचार देते हुए उन्होंने लिखा-

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं श्रुति पुरान बुध बेदा।।
जे गुन रहित सगुन होई कैसे।
जल हिम उपल बिलग नहिं तैसे।।

रामचरितमानस- 1-115-1/3

भाषा के क्षेत्र में भी मौलिक अवधारणा व्यक्त करते हुए उन्होंने मानवतावाद के मूल्यों को निर्धारित कर भाषा को 'सुरसरि' के समान हितकारी बताया है:-

'कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।
राम सुकीरति भनिति भदेसा।
असमंजस अस मोहि अँदेसा।।

रामचरितमानस-1-13-9,10

गोस्वामीजी ने जिन वैचारिक मूल्यों को सामाजिक, धार्मिक, भाषिक और राजनीतिक क्षेत्रों में स्थापित किया वे तद्युगीन परिस्थितियों की माँग थी। ऐसे वैचारिक मूल्य किसी विशेष धर्म, सम्प्रदाय या जाति-विशेष से जुड़े नहीं होते। यदि ऐसा होता तो जिन इस्लामिक विचारों के बीच तुलसीदास रह रहे थे, उनके साथ समन्वय से संबंधित विचार उन्होंने नहीं रखे। कोई आलोचक तो तुलसी के इस समन्वयात्मक 'मिशन' में यह दोष इंगित कर सकता है।

तुलसी ने जो भी समन्वयवादी विचार प्रस्तुत किए वे पाखण्ड, अन्याय, अत्याचार और अनीति के विरोध में थे। आज जीवन का हर क्षेत्र शोषण, भ्रष्टाचार, अराजकता और अतिवादिता से भर गया है। चाहे वह समाज में स्त्रियों की मर्यादा की बात हो या राजनीति में भ्रष्टाचार का या शिक्षा-जगत् में दिग्भ्रमित करनेवाली शिक्षा-नीतियों की बात हो हर ओर एक अराजक माहौल बना हुआ है। ऐसी परिस्थिति में तुलसी के समन्वयात्मक विचार ही कारगर सिद्ध होंगे न कि तुलसी के समकालीन बादशाह अकबर के समझौतावादी विचार, जिन्होंने दो विरोधी विचारों को एक करने के लिए 'दीन-इलाही' की स्थापना की। समझौतावादी विचार किसी को सम्राट् या बादशाह तो बना सकते हैं पर लोकनायक नहीं। तुलसी ने अपने समन्वयवादी विचारधारा से स्वयं के लोकनायकत्व की प्रमाणिकता सिद्ध कर दी है। बुद्ध और तुलसी में सदियों का अन्तराल है। जबतक तुलसी-जैसा कोई समन्वयसाधक अवतरित नहीं होता तबतक तुलसी के वैचारिक मूल्यों की प्रमाणिकता प्रत्येक परिस्थितियों के लिए अक्षुण्ण रहेगी। वैसे बुद्ध के पश्चात् और तुलसी से पूर्व भारत में कई विभूतियों ने जन्म-धारण किया। अनेक सम्राटों में अशोक-जैसा सम्राट् इसी बीच हुआ जो विश्व के महान शासकों में से एक है और इसकी प्रशस्ति में एक विदेशी इतिहासकार एच०जी०वेल्स ने 'विश्व इतिहास की रूपरेखा' में

लिखा है- 'इतिहास के पृष्ठों पर भीड़ करनेवाले सहस्त्रों राजाओं की नामावली तथा उनके ठाट-बाट और दान-पुण्यों के बीच अशोक का नाम अकेले नक्षत्र की भाँति चमकता रहता है।... कान्सटेनटाइन या शार्ल मेन का नाम जितने लोगों ने सुना हैं, उनसे कहीं अधिक मनुष्य अशोक की स्मृति की पूजा करते हैं।'

सम्राट् अशोक ने भगवान बुद्ध के मध्यममार्ग से प्रेरित होकर शासन की बागडोर सँभाली, जो स्वत: एक समन्वयकारी साधना थी। यदि सम्राट् अशोक में भगवान् बुद्ध के समन्वयवाद ने लोकनायकत्व को स्थापित कर दिया, जो पूर्णत: परहित की भावना से आवेष्टित था।

तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षिक भावना परिस्थितियाँ यदि सम्राट् अशोक एवं कविकुल शिरोमणि तुलसीदास के वैचारिक मूल्यों से प्रभावित होती हैं तो निस्सदेह उन्हें एक स्वस्थ एवं व्यवस्थित मार्गदर्शन मिलेगा। तन्त्र साधना के जिस युग में अनाचार, अराजकता, अव्यवस्था एवं अनैतिकता ने जिसतरह से समाज को अपने मकड़जाल में फाँसकर अज्ञानता के अँधेरे में धकेल दिया था। कुछ उसी प्रकार बढ़ती कामेच्छाओं, भोगवादी दृष्टियों तथा अनैतिक विचारों ने वर्तमान यंत्रयुग को अपनी चपेट में ले लिया है। जिसका समर्थन राष्ट्रकवि 'रामधारी सिंह दिनकर' ने इन पंक्तियों में किया है-

आवर्त्तों का है विषम जाल, निरुपाय बुद्धि चकराती है,
विज्ञान-यान पर चढ़ी हुई सभ्यता डूबने जाती है।

'दिनकर'- (लोहे के पेड़ हरे होंगे)

चतुर्दिक् बढ़ती अतिवादिता, मूल्यहीन समाज एवं अराजक परिस्थिति का उचित मार्गदर्शन केवल महात्मा बुद्ध और तुलसी के समकालीन वैचारिक मूल्य ही कर सकते हैं।

बी०डी० पब्लिक स्कूल
बुद्ध कॉलोनी, पटना-1

(पृ. 41 का शेष अंश)

वेद मन्त्रों का संग्रह है। मन्त्र निरुक्त में नियत आनुपूर्वी वाले तथा नियत पद प्रयोग परिपाटी वाले भी कहे गए हैं। **काव्यप्रकाश** में वेद को शब्द-प्रधान माना गया है। कौत्स मुनि, वेद मन्त्रों को अनर्थक मानते हैं, अनर्थक का अर्थ यह नहीं कि वे निरर्थक है, उनका कोई अर्थ नहीं है। बल्कि भाव यह है कि उनके उच्चारण में ही सामर्थ्य है। प्रत्येक मन्त्र-विशेष की शक्ति के विषय में भी ज्ञान जरूरी है। अमेरिकी वैज्ञानिक भी बीज-मन्त्रों की शक्ति को भलिभाँति मानते हैं, जो श्री सातबलेकर की पुस्तक 'सूर्य नमस्कार' से विदित है। हम सजीवों पर ध्वनि के असर को भलीभाँति जानते हैं। समय-विशेष में जो ध्वनि समूह कार्य करते हैं, वे ही हमारे राग-रागनियों के आधार है। निरर्थक मन्त्र भी, मुस्लिम मान्त्रिकों के मन्त्र भी साँप-बिच्छू आदि के विष-दमन में सफल होते हुए देखे गए हैं। अत: मन्त्र-शक्ति, यज्ञ का आधार है।

प्राचार्य
डी.ए.वी., सी. डब्लू. एस.
जयन्त, सिंगरौली (म.प्र.)

आदि शंकराचार्य

डा. सविता मिश्रा 'मागधी'
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
जैन विद्यालय, बेंगलूरु।
रचनाएँ : तन-मन (काव्य-संग्रह)
एवं अन्य विभिन्न शोध निबन्ध

बौद्धधर्म के साथ वैदिक धर्म का समन्वय स्थापित कर उसे जनोपयोगी बनाने में आदि शंकराचार्य एक दृढ-स्तम्भ हैं। इन्होंने उपनिषद् के अद्वैत दर्शन की व्याख्या कर आत्मा एवं परमात्मा के बीच अभेद सम्बन्ध की स्थापना की तथा यह सिद्धान्त दिया कि परमात्मा एक साथ सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों में अवस्थित रहते हैं। उन्होंने भारत के चारों कोनों में चार मठों की स्थापना कर सम्पूर्ण भारत को एकसूत्र में बाँधने का प्रयास किया। कहा जाता है कि उनका देहावसान 32 वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। इतनी कम उम्र में उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। किन्तु, **विडम्बना है कि इस महामानव के सम्बन्ध में भारती के साथ कामशास्त्र-विषयक शास्त्रार्थ, फिर अमरुक के शरीर में प्रवेश कर कामोपभोग की बेतुकी कहानियाँ आदि प्रचलित हुईं, जो शंकराचार्य की गरिमा को ठेस पहुँचातीं हैं।** ऐसे महामानव के जीवन एवं दर्शन पर आलेख यहाँ प्रस्तुत है। आदि शंकराचार्य से सम्बन्धित स्थानीय कथाओं को अपनी वाणी दी है जैन विद्यालय, बेंगलूरु की अध्यापिका डा. सविता मिश्र 'मागधी' ने।

जगन्मातर्मातस्तव चरण सेवा न रचिता।।
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे।
कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवति।

हे माता जगदम्बा! मैंने तुम्हारे चरणों की कभी सेवा नहीं की। तुम्हें अधिक धन-सम्पत्ति भी समर्पित नहीं किया, तथापि मुझ-जैसे अधम पर तुम्हारी कृपा बनी हुई है, इसका एकमात्र कारण है कि संसार में कुपुत्र पैदा हो सकते हैं, किन्तु कुमाता नहीं होती।

माता को सर्वोपरि माननेवाले उच्च विचारक, समाज सुधारक, शंकराचार्य का जन्म केरल प्रदेश के पूर्णानदी के तट पर बसे कलाही ग्राम में 780 ई. (कुछ विद्वानों का मत है 788 ई.) शुक्ल पक्ष पंचमी को माता सुभद्रा या विशिष्टा की कोख से हुआ था। इनके पिता भी परम ज्ञानी एवं अन्तर्यामी थे। पुत्र की अद्भुत बाल लीलाएँ देखने से उन्हें ज्ञात हो गया था कि उनके आँगन में किसी महान् विभूति ने अवतार लिया है। पाँचवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार से पूत कर इन्हें गुरु के घर पढ़ने भेज दिया गया। सात वर्ष की आयु में ही वेद-वेदान्त और वेदांगों का पूर्ण अध्ययन कर वापस आ गए।

वेदाध्ययन के उपरान्त शंकर ने संन्यास ग्रहण करना चाहा, किन्तु माता ने उन्हें आज्ञा नहीं दी। एक बार वे अपनी माँ के साथ पूर्णा नदी में स्नान कर रहे थे तभी एक मगरमच्छ ने उनका पाँव पकड़ लिया। इकलौते पुत्र को मृत्यु की गोद में जाते देख माँ सुभद्रा हाहाकार मचाने लगी। शंकराचार्य ने अपनी माता से कहा- ''यदि आप मुझे संन्यास ग्रहण करने का वचन दें तो यह मगरमच्छ मेरा पाँव छोड़ देगा।'' बालक की जीवन रक्षा हेतु माता ने संन्यासी जीवन का आदेश दे दिया। आज्ञा मिलते ही मगरमच्छ ने उनका पाँव छोड़ दिया। ''मातः, मैं तुम्हारी मृत्यु के समय तुम्हारे पास अवश्य आऊँगा।' ऐसा कह कर शंकराचार्य ने संन्यासी जीवन धारण कर लिया।

धर्म, वेद, वेदांग उपनिषद् आदिकों की विद्याएँ प्राप्त करने के लिए शिष्य शंकर अल्पायु में ही गुरु अनन्त नारायण की शरण में आए। गुरु की संपूर्ण देख-रेख में शंकर ने 'कायक', 'नादक', 'तर्क', 'व्याकरण', 'वेदशास्त्र', 'उपनिषद् आदि का ज्ञान अल्पकाल में ही प्राप्त कर किया। स्पष्ट है कि ऐसे महान् ज्ञानी गुरु के संरक्षण में इस प्रतिभाशाली

शिष्य ने सभी विषयों में दक्षता हासिल कर ली। इससे पहले मात्र आठ वर्ष की आयु में जब उनके गुरु गोविन्द भगवत्पाद ने शिष्यत्व प्रदान करने के शर्त स्वरूप उनसे यह प्रश्न किया कि बताओ तुम आखिर क्या हो? उस आठ साल के बालक ने श्लोक में जवाब दिया-

ना भूमिर न थोयम, न तेजां न च वायुर,
न काम न इन्द्रियाम, वा न थेसम समूहा।
अनाएकान्ति कथवाथ, सुषुप्तिऐका सिद्ध,
स्ताहै चैका अवशिता, शिव केवलोऽहम्।

चण्डाल के रूप में विश्वनाथजी के दर्शन-

जनश्रुति है कि काशी नगरी में एक दिन विश्वनाथ भगवान ने चण्डाल के रूप में उन्हें दर्शन और ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने और धर्म प्रचार करने का आदेश दिया। चण्डाल-वेषधारी विश्वनाथ के आदेश से शंकर ने ''ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक और छन्दोग्योपनिषद् पर भाष्य लिखा। जब भाष्य सूत्र लिखा जा चुका, तो एक दिन एक दूसरे ब्राह्मण ने उनसे गंगातट पर सूत्र का अर्थ पूछा। उस सूत्र पर शंकर का उस ब्राह्मण के साथ आठ दिनों तक गंगा के निर्मल तट पर शास्त्रार्थ हुआ। बाद में ज्ञात हुआ कि ब्राह्मण रूपी देवता स्वयं वेदव्यासजी थे।

शास्त्रार्थ द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार-

बचपन से ही शंकर का रुझान वैदिक धर्म पर था। इसी कारण वे सनातन धर्म के प्रबल संरक्षक बने। अलौकिक वैदिक ज्ञान और वेदान्त दर्शन से बौद्ध मीमांसा, सांख्य और चार्वाक अनुभूतियों की वेदविरोधी भावनाओं को सफल नहीं होने दिया। आदि शंकराचार्य ने ज्ञान मार्ग के द्वारा ही न केवल बौद्धधर्म और अन्य संप्रदायों के विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर वेदधर्म का मान बढ़ाया, बल्कि उन धर्म और संप्रदाय के अनुयायियों ने भी वैदिक धर्म स्वीकार कर लिया। ऐसा कर उन्होंने हिन्दू धर्म का पुनर्जागण के साथ ही सनातन धर्म और वेदों को फिर से स्थापित किया। यही कारण है कि वे प्राचीन धर्म के अद्वैत मत के प्रवर्तक कहलाए एवं उनके बौद्धिक दर्शन और अद्वैतमत शांकर-दर्शन या शांकर-मत कहलाया।

आद्यशक्ति का दर्शन-

शताधिक ग्रन्थों की रचना शंकराचार्य ने शिष्यों को पढ़ाते हुए ही कर दी थी। बौद्ध और जैन धर्म के आकर्षण से लुप्त-प्राय सनातन धर्म की पुनर्स्थापना, तीन बार भारत भ्रमण, शास्त्रार्थ दिग्विजय भारत के चारो कोनों में शंकरमठ की स्थापना, चारो कुंभ की व्यवस्था, वेदान्त दर्शन के शुद्धाद्वैत संप्रदाय के शाश्वत जागरण के लिए दशनामी नागा संन्यासी अखाड़ों की स्थापना, पंचदेव प्रतिपादन उन्हीं की देन है। सगुण, शक्ति की उपासना से पहले वे केवल निर्गुण ब्रह्म के अस्तित्व पर ही निष्ठा रखते थे।

एक बार अपने शिष्यों के साथ ब्राह्ममुहूर्त में गंगा स्नान के लिए जाते समय मणिकर्णिका घाट के मार्ग पर उन्हें विलाप करती हुए एक स्त्री मिली, जो अपनी गोद में अपने मृत पति का सिर रखें करुण क्रन्दन कर रही थी। शिष्यों ने उस स्त्री से आग्रह किया कि अपने मृत पति के शव को मार्ग से हटा दे, किन्तु वह युवती शिष्यों की अवहेलना कर विलाप करती रही। तब स्वयं शंकराचार्य ने शव को हटाने का निवेदन किया। उनके निवेदन पर उस युवती ने कातर नेत्र से उन्हें देखा और बोली- हे संन्यासी आप लोग बार-बार मुझमे शव हटाने क्यों बोल रहे हैं? इस शव से ही क्यों नहीं हटने को कहते कि वह स्वयं आप के मार्ग से हट जाए।'' आचार्य ने दुःखी युवती की पीड़ा का अनुभव करते हुए कहा- ''हे देवी! आप पतिशोक में शायद भूल गई कि शव में स्वयं हटने की शक्ति नहीं होती।'' उस नारी ने तुरन्त उत्तर दिया- ''महात्मन्! आपकी दृष्टि में तो शक्ति निरपेक्ष ब्रह्म ही जगत् का कर्ता है, फिर शक्ति के बिना यह शव क्यों नहीं हट सकता?''

एक सामान्य स्त्री से ऐसी गूढ़ ज्ञानमय बातें सुनकर आचार्य ने वहीं समाधि लगा ली। अंत:चक्षु से उन्होंने देखा सर्वत्र आद्यशक्ति महामाया लीला विलाप कर रही हैं। उनका हृदय अविवर्चनीय आनन्द से भर उठा। मुख से मातृवंदना के शब्द पल्लवित होने लगे। उनके साथ ही आचार्य ऐसे महासागर बन गए जिसमें अद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, निर्गुण ब्रह्म ज्ञान के साथ-साथ सगुण साकार भक्ति भी साथ-साथ हिलोरे लेने लगी। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि ज्ञान की अद्वैत भूमि पर जो परमात्मा निर्गुण, निराकार ब्रह्म है वही द्वैत भूमि पर सगुण साकार रूप है। इसी कारण उन्होंने निर्गुण और सगुण दोनों भक्ति भावना का समर्थन किया तथा निर्गुण तक पहुँचने के लिए सगुण की उपासना को अपरिहार्य सोपान माना। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि धरती पर ज्ञान और भक्ति का मिलन अद्वैत ज्ञान ही सभी साधकों की परम उपलब्धि है।

समापन-

आदि शंकराचार्य ने 'अद्वैत' के सिद्धान्तों की जैसी व्याख्या की है वह अन्यत्र नहीं मिलती। उन्होंने आत्मा की एक रूपता का प्रतिपादन कर एक अनूठी अद्वैत परंपरा का पोषण किया। 'ब्रह्म सत्य', 'जगत मिथ्या', शंकराचार्य के दर्शन का मूल सिद्धांत कहा जा सकता है। उन्होंने जीवन के गूढ़ रहस्यों का वेदान्तिक विवेचना किया है। संस्कृत भाषा को लोक सुलभ बनाने में उनका विशेष योगदान है। अपने अत्यल्प जीवन में शंकराचार्य ने 200 से अधिक स्तोत्रों का सर्जन किया। उनकी रचनाएँ दर्शन और साहित्य की अनमोल पूंजी है, जिनमें भक्ति, वेदान्त, भारतीय दर्शन, विज्ञान, मानववाद आदि के तत्त्व प्रस्तुत किये गये हैं। इन्होंने मनीषियों के लिए निम्न सात विशेषताँ बताई है।

1) आत्मसन्तुष्टि।

2) शान्तचित यानी चित्त का स्थैर्य।

3) किसी भी वस्तु (लभ्य या अलभ्य) में लगाव न होना।

4) इन्द्रियाकर्षण से मुक्त रहना अथवा इन्द्रिय में अनाशक्ति।

5) भगवद् भक्ति के साथ-साथ वैचारिक रूप से जितेन्द्रिय होना।

6) समस्त ब्रह्माण्ड को एक स्वप्नवत् अवस्था में समझना।

7) व्यक्तिपरक इच्छाओं को वश में रखना।

शंकराचार्य के विचारों से वशीभूत स्वामी विवेकानन्द वाणी 'शंकराचार्य ने हमें ईश्वर प्रदत्त तन उपहारों के विषय में ज्ञान दिया, जो इस प्रकार है-

1. यह शरीर जिसमें आत्मा का स्थायी निवास होता है।
2. प्रभु प्राप्ति की पिपासा।
3. वह गुरु, जो अपने ज्ञान के प्रकाश से हमारा मार्ग दर्शन करा सके।

शरीर का त्याग-

दिग्विजय के बाद बदरिकाश्रम लौट आए और उन्होंने समस्त मानव जाति को एक जीवन्मुक्ति का सूत्र दिया-

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

बदरिकाश्रम में ज्योतिर्मठ की स्थापना की और तोटकाचार्य को उसका मठाधीश बनाया। अन्त में वे केदारनाथ क्षेत्र में आए, जहाँ उन्होंने मात्र 32 वर्ष की अल्पायु में ही शरीर त्याग दिया। अपनी मृदु वाणी से सभी को मुग्ध करनेवाले शंकराचार्य के बारे में किंवदतियाँ हैं कि उनके अधरों पर स्वयं सरस्वती का निवास था। भगवान् शंकराचार्य अपनी अलौकिक प्रतिभा, प्रकाण्ड पांडित्य, प्रचण्ड कर्मशीलता, सर्वोत्तम त्याग युक्त अगाध भगवद्भक्ति और योगैश्वर्य के सनातन के संजीवनी सिद्ध हुए। अल्पायु में ही जीवन का सूर्यास्त होने से सनातन धर्म की अमूल्य निधि का क्षरण हुआ।

प्रवक्ता, जैन विश्वविद्यालय
बेंगूलरू, कर्नाटका

स्थायी-स्तम्भ

संस्कृत सीखें

पं. भवनाथ झा

(पंचम पाठ)

पिछले चार अंकों से हम संस्कृत भाषा सीखने के लिए पाठमाला दे रहे हैं। इसके अन्तर्गत सबसे पहले शब्दरूपों को कंठस्थ करने का पाठ आरम्भ किया है।अभीतक हमने शब्दों के रूपों को कण्ठस्थ करने की अनुशंसा की है। इतने शब्दों के रूप कण्ठस्थ कर लेने के बाद अब संस्कृत वाक्य प्रयोग में सबसे पहले विशेष्य-विशेषण भाव को समझ लेना आगे के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। हिन्दी का एक वाक्यखण्ड लें- 'लाल रंग के फूल से देवी की पूजा'। यहाँ हिन्दी की वाक्य-योजना के अनुसार 'के' परसर्ग का प्रयोग है जो संबन्ध कारक का सूचक है। इसका अनुवाद करने में लोगों को भ्रम होता है। दूसरी ओर संस्कृत की यह पंक्ति देखें:-

मन्दिराणि विचित्राणि शोभनानि शुभानि च। दृश्यन्ते पुलिने नद्याः विमले रमणे तटे॥

इस श्लोक में चार प्रथम शब्द नपुंसक लिंग, प्रथमा विभक्ति तथा बहुवचन में है। 'दृश्यन्ते' क्रियापद है तथा इसके बाद 'पुलिने'- सप्तमी एकवचन, 'नद्याः'- षष्ठी एकवचन तथा इसके बाद सभी सप्तमी एकवचन हैं। यहाँ अर्थ लगाने में अन्वय की आवश्यकता पड़ती है।

इन दोनों स्थितियों के लिए हमें विशेष्य-विशेषण को समझना पडेगा। अतः इस पाठ में हम इसी विषय पर विवेचन करेंगे। विशेषता विशेषण कहलाती है और जिसकी विशेषता कही जाये उसे विशेष्य कहते हैं। जैसे- 'लाल फूल' शब्द में 'फूल' विशेष्य है और 'लाल' विशेषण। संस्कृत में भी 'रक्तं पुष्पं' में यही स्थिति है। संस्कृत में नियम है कि विशेष्य के अनुसार विशेषण के भी लिंग, विभक्ति एवं वचन होते हैं। फलतः जहाँ हमें एक ही विभक्ति, लिंग एवं वचन के एक से अधिक शब्द मिलें तो हमें देखना चाहिए कि ये सभी शब्द अलग अलग हैं या परस्पर विशेष्य एवं विशेषण हैं। अलग-अलग शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं- **तोमरैः भिन्दिपालैः च शक्तिभिः मुसलैः तथा**। यहाँ विशेष्य-विशेषण न होकर सभी विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र के नाम हैं, जिनसे देवी ने युद्ध किया। किन्तु अनेक स्थलों पर ये विशेष्य-विशेषण भी होंगे जैसा कि ऊपर के उदाहरण में है। जहाँ विशेष्य-विशेषण हैं वहाँ देखना होगा कि इनमें कौन शब्द विशेष्य है जिसके विशेषण के रूप में अन्य शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे ऊपर के संस्कृत उदाहरण में मन्दिर विशेष्य है तथा विचित्र, शोभन एवं शुभ ये तीनों विशेषण हैं।

प्राचीन काल की व्याख्या-शैली के अनुसार ऊपर के श्लोक की व्याख्या हम इस प्रकार हिन्दी भाषा में करेंगे- ''अनेक मन्दिर नदी के तट पर देखे जाते हैं। मन्दिर कैसे हैं? विचित्र हैं अर्थात् विभिन्न प्रकार के चित्रों से भरे-पड़े हैं और शोभन हैं- शोभा प्रदान करनेवाले हैं और शुभ हैं- पापों को नाश करने में समर्थ हैं। तट कैसा है? वह पुलिन है अर्थात् नदी का जल जहाँ तक पहुँचता है, वह भाग है। नदी के जल से सिचित भू-भाग को पुलिन कहते हैं। वह विमल है, अर्थात् निर्मल है और रमण है- रमणीय है रमण करने योग्य है। किसका तट है? नदी का तट है।'' इस व्याख्या शैली को ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि विशेष्य और विशषण का भाव किस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

अब हिन्दी के कुछ शब्दों का संस्कृत में अनुवाद देखें:-

1. बहुत विस्तृत घने जंगल में- **अतिविस्तृते गहने वने**

2. विशाल वृक्ष से गिरे हुए ढेर सारे पत्ते- **विशालात् वृक्षात् पतितानि बहूनि पत्राणि**

3. सुन्दर तथा मँहगे पत्थरों से बना हुआ विशाल तथा ऊँचा मन्दिर- **शोभनैः महार्घैः प्रस्तरैः निर्मितं विशालम् उत्तुङ्गं मन्दिरम्।**

4. बड़ी-बड़ी आकर्षक कमल के समान आँखों से - **विशालाभ्याम् आकर्षकाभ्यां कमलसदृशाभ्यां नेत्राभ्याम्।**

यहाँ हमें स्मरण रखना होगा कि विशेष्य के अनुसार विशेषण के लिंग बदलेंगे। विशेषण के प्रयोग तीनों लिंगों में सभी विभक्तियों और वचनों में हो सकते हैं। जैसे निम्न उदाहरण से इसे समझा जा सकता है-

सुन्दर वस्त्र- **शोभनं वस्त्रम्।** सुन्दर पर्वत- **शोभनः पर्वतः।** सुन्दर स्त्री- **शोभना स्त्री।**

किसी शब्द का स्त्रीलिंग में रूप क्या होगा यह जानने के लिए हमें संस्कृत के स्त्रीप्रत्ययों को देखना होगा। सामान्यतः अकारान्त शब्द से स्त्रीलिंग में आकार लग जाता है- जैसे शोभनः-शोभना, विशालः-विशाला, कथितः-कथिता, उक्तः-उक्ता, गतः-गता आदि। विशेष जानकारी के लिए स्त्री-प्रत्ययों का अध्ययन अपेक्षित होगा।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी प्रबुद्ध पाठक अपने से चिन्तन करेंगे तथा संस्कृत से हिन्दी अनुवाद के लिए कुछ श्लोक यहाँ दिये जा रहे हैं। चूँकि अभीतक सन्धि के सम्बन्ध में कोई विमर्श नहीं किया गया है, अतः यहाँ विशेष्य-विशेषण के जानने के क्रम में श्लोक सन्धि-विच्छेद कर दिये जा रहे हैं:

व्याघ्रचर्मधरं शांतं मुनिं नियतमानसम्।
व्याघ्रबुद्ध्या जघान-आशु शरेण-आनतपर्वणा।।15।।
अतिवेगेन विप्रेंद्राः-तत्-पत्नीं च ससायकः।
निजघान पतिप्राणां निविष्टां पत्युः-अन्तिके।।16।।
विलोक्य मातापितरौ तत्पुत्रे निहतौ वने।
रुरोद भृशदुःखार्तो विललाप च कातरः।।17।।

युवां निरागसौ- अद्य केन पापेन सायकैः।
निहतौ वै तपोनिष्ठौ मत्प्राणौ मत्-गुरू वने।।21।।
एवं तयोः सुतो विप्रा मुक्तकण्ठं रुरोद वै।
अथ प्रलपितं श्रुत्वा शंकरो विपिने चरन्।।22।।

मलभाण्डे नवद्वारे पूय-असृक्-शोणित-आलये।।33।।
देहे- अस्मिन्-बुद्बुदाकारे कृमि-यूथ-समाकुले।
काम-क्रोध-भय-द्रोह-मोह-मात्सर्य-कारिणि।।34।।
परदार-परक्षेत्र-परद्रव्य-एकलोलुपे।
हिंसा-असूया-अशुचिव्याप्ते विष्ठा-मूत्र-एकभाजने।।35।।
यः कुर्यात्-शोभनधियं स मूढः स च दुर्मतिः।
बहुच्छिद्र-घट-आकारे देहे-अस्मिन्-अशुचौ सदा।।36।।
वायोः-अवस्थितिः किं स्यात्-प्राणाख्यस्य चिरं द्विज।
अतो मा कुरु शोकं त्वं जननीं पितरं प्रति।।37।।

स्कन्दपुराणम्, खण्डः 3 (ब्रह्मखण्डः), सेतुखण्डः, अध्यायः 48

❖

कलियुग का काल

डॉ. उषा रानी

भारत में दीर्घ कालगणना के लिए युगों का मापदण्ड निश्चित है। जब सभी ग्रह एक ही राशि में एकत्र होते हैं, तब युग का आरम्भ होता है। इस क्रिया में चार लाख बत्तीस हजार वर्ष लगते हैं। इतनी अवधि के एक युग को कलियुग कहा गया, दो युगों को द्वापर, तीन पर त्रेता और चार बार होने पर सतयुग माना गया। चारों युगों को मिलाकर एक चतुर्युगी माना गया, जिसकी परिमाण तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष है। ऐसे इकहत्तर चतुर्युगी पर एक मन्वन्तर, और चौदह मन्वन्तर का एक कल्प, जो ब्रह्माजी का एक दिन माना जाता है। जितना बड़ा दिन, उतनी बड़ी रात, ऐसे अहोरात्र, पक्ष, मास, वर्ष के अनुसार ब्रह्माजी की आयु 100 वर्ष मानी गई। यह ब्रह्माण्ड की आयु है, जिसे महाकल्प कहा जाता है तथा यह कालगणना की महत्तम इकाई है।

अभी जो कल्प चल रहा है (ब्रह्मा का एक दिन), उसका नाम श्वेतवाराह कल्प है, मन्वन्तर का नाम वैवस्वत है तथा यह कलियुग का प्रथम चरण है। वर्तमान कलियुग का प्रारम्भ कब हुआ? महाभारत के अनुसार द्वापर और कलि के अन्तराल में कौरवों और पाण्डवों के बीच युद्ध हुआ था, यथा- अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्। समन्तपञ्चके युद्धं कुरु पाण्डवसैन्ययो:।।

द्वापर एवं कलि की सन्धि में घटी इस घटना की वास्तविक तिथि प्राप्त करने के लिए भारतीय गणितज्ञों ने बहुत परिश्रम किया है। इनमें से आर्यभट्ट एवं वराहमिहिर के नाम आदर के साथ लिये जाते हैं। इन्होंने प्रचलित संवत् के आधार पर गणना कर कलि के प्रारंभ होने की तिथि से 36 वर्ष पहले युद्ध की बात कही है। विक्रम संवत् ईसवी पूर्व 57 वर्ष से और शक संवत् ईसवी सन् 78 वर्ष से प्रारम्भ होता है। तदनुसार संवतों की समतुल्य गणना से ई. पू. 3101 में कलि प्रवेश और ई.पू. 3138 में महाभारतीय युद्ध का काल बताया गया है। भारतीय पंचांग में 20 फरवरी की मध्यरात्रि ई.पू. 3102 से यह गणना मानी जाती है जो कलि प्रवेश की मान्य तिथि है। इसकी सूक्ष्म गणना के अनुसार ई.पू. 3101 के 20 फरवरी की रात्रि में 2 बजकर 27 मिनट और 30 सेकेण्ड बीतने पर कलि प्रवेश माना जाता है। पुराग्रंथों में इसके कतिपय अन्त:साक्ष्य निम्नानुसार है:- कलिप्रवेश के सम्बन्ध में भागवत का कहना है -

यदा देवर्षय: सप्त मघासु विचरन्ति हि। तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मक:।।

(जब सप्तर्षि मघा नक्षत्र में प्रवेश करते हैं, तो उसी समय से कलियुग का प्रवेश माना जाता है। इस नक्षत्र में सप्तर्षि 112 वर्षों तक रहते हैं)

विष्णु पुराण की उक्ति है:-

यस्मिन् कृष्णो दिवं जात: तस्मिन्नेव तदाहनि। प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहु: पुराविद:।।

अर्थात् प्राचीन इतिहास के जानकार बताते हैं कि जिस दिन जिस समय श्री कृष्ण ने देह त्याग किया, उसी दिन उसी समय से कलियुग प्रारंभ हो गया। राजा परीक्षित के शासन काल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र में अवस्थित थे। ई.पू. 3102 के उत्तरार्ध से प्रारम्भ कर राजा परीक्षित ने 60 वर्षों तक शासन किया। महाभारत आदिपर्व में सर्पसत्र के ''प्रजा: के समय यह उक्ति:- ''इमास्तव पिता षष्ठिववर्षाण्यपालयत्। ततो दिष्टान्तमापन्न: सर्वेषां दु:खमावहत्।।'' (हे जनमेजयजी! आप के पिता ने 60 वर्षों तक प्रजाओं का पालन किया। किन्तु सौभाग्य के अन्त होने के कारण इन्होंने सभी लोगों को दु:खी बना दिया) (इसमें सर्प दंश से मृत्यु की सूचना है) 96 वर्ष की अवस्था में परीक्षित ने वेदव्यास की अमर कृति श्रीमद्भागवत का शुकदेवजी से श्रवण किया था। भागवत के अनुसार:- ''ते त्वदीये द्विजा: काले अधुना चाश्रिता: मघा:।'' (शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं कि आप के सिंहासन पर आसीन होने के समय सप्तर्षि मघा में थे और आजकल भागवत के श्रवण के समय भी वे मधा में ही हैं।)

❖

गण्डमूल दोष : भ्रान्ति एवं वास्तविकता

(सत्तईसा कब और कैसे)

गणित-फलित ज्योतिषाचार्य,
विद्यावारिधि,
ज्योतिष परामर्शदाता,
महावीर ज्योतिष मण्डप,
महावीर मन्दिर, पटना

आचार्य राजनाथ झा

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कुल २७ नक्षत्रों में ६ ऐसे नक्षत्र हैं, जिनकी कुछ अवधि में जन्म होने पर 'गण्डमूलदोष' कहा जाता है। किन्तु वर्तमान में अनेक तथाकथित ज्योतिषी सूक्ष्म विचार न कर नक्षत्र का भोगकाल देख लेते हैं और गण्डमूल दोष की घोषणा कर देते हैं ताकि भयभीत होकर बच्चे के माता-पिता शान्ति करावें और उनका पौरोहित्य चलता रहे। इससे ज्योतिष के मूल पक्ष की हानि हो रही है। हमारे प्राचीन ऋषियों के कथन को ताक पर रखा जा रहा है, जो खेद का विषय है। अतः यहाँ गण्डमूल दोष के सम्बन्ध में भ्रान्तियों को दर करता हुआ आचार्य राजनाथ झा का यह आलेख सभी लोगों के लिए प्रणीय है।

ज्योतिष शास्त्र में पूर्वाचार्यो ने अनेक योग निर्दिष्ट किये हैं, जिससे मानव जीवन पर पड़नेवाले शुभ-अशुभ फलों का ज्ञान हमलोग जन्मगण्डली के माध्यम से ज्ञात करते हैं। इनमें जातक (शिशु) का जन्म होते ही सर्वप्रथम लोग जानना चाहते हैं कि गण्डमूल अर्थात् सत्तइसा में यह जातक हैं या नहीं। गण्डयोग के नाम पर कितने लोग अभिभावकों को डराते हैं तथा अनावश्यक खर्च में भी डाल देते हैं। अतः गण्डमूल योग के विषय में ज्ञान रखना आवश्यक है। जैसे गण्डयोग में जन्म हैं या नहीं? है तो दोष क्या है? दोष रहने पर उसका निदान क्या है आदि प्रश्नों का समाधान इस तरह से किया जाता है।

अश्विनी-मघ-मूलादौ त्रिवेद-नवनाडिकाः।
रेवती-सर्प-शक्रान्ते मास-रुद्र-रसस्तथा॥
आद्ये पादे पितुर्हन्ति द्वितीये जननी तथा।
तृतीये च धनं हन्ति चतुर्थे शुभमेव हि॥ - बाल0 ज्यो0, श्लो0 10-11

गण्डान्त मूल दोष

1. अश्विनी नक्षत्र	आदि के 3 घटी (1 घंटा 12 मिनट)
2. मघा नक्षत्र	आदि के 4 घटी (1 घंटा 36 मिनट)
3. मूल नक्षत्र	आदि के 9 घटी (3 घंटा 36 मिनट)
4. रेवती नक्षत्र	अंत के 12 घटी (4 घंटा 48 मिनट)
5. अश्लेषा नक्षत्र	अंत के 11 घटी (4 घंटा 24 मिनट)
6. ज्येष्ठा नक्षत्र	अन्त के 6 घटी (1 घंटा 12 मिनट)

गण्डान्त मूल मे उत्पन्न हुए जातक का मुख गण्डान्त शान्ति करवाकर ही पिता देखे। मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न हुए जातक से पिता को, दूसरे चरण में माता को, एवं तीसरे चरण मे धन को हानि पहुँचती है किन्तु चौथे चरण मे जन्म शुभ फलदायक होता है। अश्लेषा नक्षत्र में इसके विपरीत फल प्राप्त अर्थात् प्रथम चरण मे शुभ फल प्राप्त होता है, दूसरे चरण मे धन का नाश होता है, तीसरे चरण मे जन्म लेने से माता के लिए एवं चौथे चरण मे जन्म लेने से जातक पिता के लिए अरिष्टकारक होता है।

महूर्तचिन्तामणिकार रामदेवज्ञ ने भी अपने ग्रन्थ में बतलाया है -

आद्ये पिता नाशमुपैति मूल पादे द्वितीये जननी तृतीये।
धनं चतुर्थोऽस्य शुभोऽथ शान्त्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम्॥

- **मुहूर्तचिन्तामणि,** नक्षत्रप्रकरणम्, श्लोक 55

जातकपरिजातकार वैद्यनाथ ने इस विषय को इस प्रकार कहा है-

मूलावासवयोर्मघाभुजगयोः पौष्णाश्वयोः सन्धिजं
गण्डान्तं प्रहरप्रमाणमधिकानिष्टप्रदं प्राणिनाम्।
ज्येष्ठादानवतारसन्धिघटिका चाभुक्तसंज्ञा भवेत्
तन्नाडीप्रभवाङ्गनासुतपशुप्रेष्याः कुलध्वंसकाः॥

नक्षत्र गण्डान्त अश्लेषा, ज्येष्ठा एवं रेवती नक्षत्र के अंत का 1.30 घंटा या तथा अश्विनी, मघा मूल नक्षत्र के आदि का 1.30 घंटा नक्षत्र गण्डान्त कहलाता है। गण्डान्त का समय कितना हो इस संदर्भ में जातक पारिजातकार वैद्यनाथ ने 3 घंटे की अवधि बतलायी है। श्रीपति के मत से कुल 4 घटी आदि के दो और अंत के दो, कुल 96 मिनट का समय गण्डान्त होता है। इन्ही नक्षत्रों की संधि में एक घटी अर्थात् बारह मिनट का समय अभुक्तमूल कहलाता है। अभुक्तमूल में जन्म लेने पर जातक विशेष कुप्रभाव से ग्रसित रहता है। यहाँ चक्र के द्वारा वृक्षाकार मूल नक्षत्र प्रस्तुत हैं।

॥ वृक्षाकारमूलचक्र ॥

वृक्ष	*भाग*	*घटी*	*अन्य मत से घटी*	*फल*
मूल	1	7	4	स्वामीनाश
स्तंभ	2	8	7	हानि
त्वचा	3	10	10	भ्रातृनाश
शाखा	4	11	8	माता का नाश
पत्रा	5	12	9	कलावान्
पुष्प	6	5	5	राजप्रिय
पफल	7	4	6	राज्यप्राप्ति
शिखा	8	3	11	अल्पजीवन

पुत्रजन्म के समय मूल पुरुष का फल इस तरह से वर्णित है।

॥ पुत्रजन्म समय में मूल नक्षत्रपुरुष फल॥

भाग	*अंग*	*घटी*	*फल*
1	मस्तक	5	राजा
2	मुख	7	पितामरण
3	स्कंध	4	महाबल
4	भुजा	8	बलवान्
5	हाथ	3	हत्या
6	हृदय	9	राजसचिव

7	नाभि	2	ब्रह्मवेत्ता
8	उपस्थ	10	अतिविषयी
9	जानु	6	अधिक बुद्विमान्
10	पैर	6	मरण

इसी तरह कन्याजन्म के समय भी मूल नक्षत्र का जन्म जातक के उपर इस तरह से पड़ता है।

।। कन्याजन्म समय में मूल पुरुषाकार फल।।

भाग	अंग	घटी	फलम्
1	मस्तक	4	पशुपीड़ा
2	मुख	6	धनहानि
3	कण्ठ	5	धनागम
4	हृदय	5	कुटिलता
5	बाहु	10	वित्तलाभ
6	हाथ	8	दयाधर्म
7	गुह्य	4	अतिकामी
8	जंघा	4	बड़े मामा का नाश
9	जानु	4	बड़े भाई का नाश
10	पैर	10	वैधव्यता

पुरुष जातक के लिए अश्लेषा नक्षत्र के साठ घटियों का फल इस तरह से प्राप्त होता है।

।। पुरुषाकार अश्लेषा फल।।

भाग	अंग	घटी	फलम्
1	मस्तक	5	सुन्दर पुत्र या राज्यलाभ
2	मुख	7	पिता का नाश
3	आंख	2	माता का नाश
4	गला	3	स्त्री लंपट
5	कन्धा	4	गुरूभक्त
6	हाथ	8	बलवान्
7	हृदय	11	आत्मघाती
8	नाभि	6	स्त्रीवान्, भ्रमी
9	गुह्य	9	तपस्वी
10	पैर	5	धन विनाशी

वृक्षाकार अश्लेषा नक्षत्र के मूलचक्र शास्त्रकारों ने ये बतलाये है:-

।। वृक्षाकार अश्लेषा नक्षत्र।।

भाग	अवयव	घटी	फल
1	फल	10	लक्ष्मी
2	पुष्प	5	राज्य
3	पत्ता	9	भय

4	डाल	7	हानि
5	छाल	13	माता का नाश
6	लता	12	पिता का नाश
7	स्कंध	4	स्वयं का नाश

ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से तिथिगण्डान्त एवं राशिगण्डान्त का भी विचार करना चाहिए, जो इस तरह है:-

तिथिगण्डान्त-1, 6, 11 तिथियों के आदि के एक घटी और पूर्णा अर्थात् 5, 10, 15 तिथियों के अंत की एक घटी अर्थात् 12-12 मिनटों का तिथि गण्डान्त होता है। यह समय शुभ कार्यो के लिए श्रेयस्कर नहीं है।

लग्नगण्डान्त- कर्क, सिंह, वृश्चिक, धनु, मीन, मेष लग्नों के बीच की एक घटी लग्न-गण्डान्त होता है, इनके अंतिम अंश एवं आदि अंश भी गण्डान्त है।

मूलतः नक्षत्र का दुष्प्रभाव जातक पर विशेष पड़ता है, जैसे मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में जन्म लेने से पिता का नाश होता है, द्वितीय चरण में माता का नाश होता है, तृतीय चरण में धन का नाश तथा चतुर्थचरण में शुभफल दायक होता है। अश्लेषा के प्रथम चरण में विशेष गण्डदोष नहीं होता, द्वितीय चरण में धन का नाश, तीसरे चरण में माता के लिए कष्टकर और चतुर्थ चरण में जन्म होने पर पिता के लिए अनिष्टकारक होता है।

मूला मघाश्विचरणे प्रथमे पितुश्च
पौष्णेन्द्रयोश्च फणिनस्तु चतुर्थपादे।
मातुः पितुः स्ववपुषोऽपि करोति नाशं
जातो यथा निशि दिनेऽप्यथ सन्ध्ययोश्च॥

- जातक परिजात, अ0 9, श्लोक 57।।

अश्विनी, मघा, मूल, नक्षत्रों के प्रथम चरण में जन्म होने पर पिता के लिए अनिष्ट होता है। रात्रि समय मे रेवती नक्षत्र के चतुर्थ चरण मे जातक का जन्म हो तो माता के लिए कष्टकारक, ज्येष्ठा नक्षत्र के चतुर्थ चरण मे दिन मे जन्म हो तो पिता के लिए अरिष्टकारक और अश्लेषा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में जन्म हो तो स्वयं को अरिष्ट करता है। दिन में गंडमूल नक्षत्र में जातक का जन्म हो तो पिता को और रात्रि में जन्म होने पर माता एवं संध्याकाल जन्म होने से स्वयं नक्षत्र जन्य कुप्रभाव से ग्रसित होता है।

गण्ड शब्द का अर्थ ही होता है- विस्फोट। इसका फल अवश्य ही जातक के उपर घटित होता है। ज्येष्ठा के अन्त के एक घटी दोनों को मिलाकर अभुक्तमूल ऋषि वसिष्ठ ने बताया है एवं ज्येष्ठा के अंत की आधी घटी तथा मूल के आदि की आधी घटी दोनों मिलाकर एक घटी अभूक्तमूल बृहस्पति का मत है।

कहा गया है कि-

अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं हि नारदः।
वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ बृहस्पतिस्त्वेकघटीप्रमाणकम्॥

- मु0 चि0, न0 प्र0, लो0 53

रुद्रयामलतन्त्र के अनुसार अभुक्तमूल में जन्मे जातक को कम-से-कम 27 दिन, अधिक में 8 वर्ष पर्यन्त अन्यत्र पालन करे। ज्येष्ठा नक्षत्र मे उत्पन्न जातक को 15दिन, अश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न जातक को 9 मास तक देखना वर्जित किया गया है। परन्तु, गोप्रसव, गण्डान्त शान्ति कराकर 13, 15, 27 वें दिन दर्शन करे। गण्डान्त की शान्ति गण्डनक्षत्र में ही करना शास्त्रोचित है। साधारणतया सभी गण्डातनक्षत्रों में

उत्पन्न जातकों के लिए शान्तिकर्म उसी नक्षत्र में करना चाहिए। जिस दिन जन्म हो, उसके 27वें दिन वही नक्षत्र प्राप्त होता है। उसी दिन शान्तिकर्म करना सबसे अधिक श्रेयष्कर माना गया है। गोमुखप्रसव शान्ति सभी नक्षत्रों में विहित है। इसमें सुवर्ण एवं गोदान करना भी विहित है। इसके लिए विशद मूलशान्तिपद्धति भी धर्मशास्त्रकारों ने बनाये है, जिसमे गण्डमूल नक्षत्रों की शान्ति करने के उपाय निर्देशित किये गये है।

जो व्यक्ति इन पद्धति के अनुसार गण्डमूलदोष शान्ति कराने में असमर्थ हों, वे मन्त्र जप एवं वनस्पति-धारण के द्वारा भी इस दोष की शान्ति कर सकते हैं। जनसाधारण के लिए एक सुगम प्रक्रिया यहाँ दी जा रही है:-

1. अश्विनी नक्षत्र का वैदिक मन्त्र-

ॐ अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्। वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम्। ॐ अश्विनीकुमाराभ्यां नमः॥ मन्त्रजप सं0- 5,000, चिड़चिड़ी की जड़ को उपर्युक्त वैदिक मन्त्र से अभिमंत्रित कर दाहिनी भुजा में धारण करने या करवाने से अभूतपूर्व शान्ति मिलती है, ये मेरे स्वानुभूत हैं।

2. अश्लेषा नक्षत्र का वैदिक मन्त्र-

ॐ नमोस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः। ॐ सर्पेभ्यो नमः॥ मन्त्रजप सं0 -10,000, पटोलमूल (पंचहेटि) की जड़ अभिमंत्रित कर धारण करें।

3. मघा नक्षत्र का वैदिक मन्त्र-

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः। पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः। प्रतिपामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः। अक्षन्नपितरोमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्तः पितरः पितरः शुन्दध्वम्। ॐ पितृभ्यां नमः॥ मन्त्र सं0- 10,000, भृंगराज (भङरिया) की जड़ अभिमन्त्रित कर धारण करें।

4. ज्येष्ठा नक्षत्र का वैदिक मन्त्र-

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिद्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रमाह्वयामि शक्रं पुरहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः। ॐ शक्राय नमः। मन्त्र सं0- 10,000, चिड़चिड़ी की जड़ अभिमंत्रित कर धारण करें।

5. मूल नक्षत्र का वैदिक मन्त्र-

ॐ मातेव पुत्रं पृथ्वी पुरीष्यमग्निं स्वे योनावभारुखा। तां विश्वेदेवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु। ॐ निर्ऋतये नमः। मंत्र सं0 -7000, मंदार की जड़ अभिमंत्रित कर धारण करे।

6. रेवती नक्षत्र का वैदिक मन्त्र-

ॐ पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन स्तोतारस्त इहस्मसि॥ ॐ पूष्णे नमः। मन्त्र सं0 -7,000, पीपल की जड़ अभिमन्त्रित कर धारण करें।

इस प्रक्रिया से सत्तइसा के सभी नक्षत्रों की शान्ति करनी चाहिए।

ॐ स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमिं महद्भूतं वायसं देवतानाम्।
असुरघ्नमिन्द्रसखं समत्सु बृहद्यशोनावमिवारुहेम॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

❖

श्रवण कुमार पुरस्कार योजना

वृद्धों के हित के लिए महावीर मन्दिर द्वारा सार्थक प्रयास

यावद्वित्तोपार्जनशक्तस्तावद् निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाद् जीवति जर्जरदेहे वार्ताम् कोऽपि न पृच्छति गेहे॥

– आदि शंकराचार्य

आदि शंकराचार्य ने आज से करीब 1200 वर्ष पूर्व वृद्धों के विषय में जो बातें लिखी थीं, वह आज भी हम समाज में पाते हैं। वृद्ध होने पर अधिकांश लोगों की दशा दयनीय हो जाती है। संयुक्त परिवार की टूटती हुई अवधारणा ने तो उन्हें और चिन्तनीय स्थिति में खड़ा कर दिया है। पुत्रियाँ ससुराल चली जाती हैं, नौकरीपेशा पुत्र अपने ध्रुवीकृत परिवार को लेकर या तो दूर स्थान पर चले जाते हैं या एक ही साथ रहते हुए भी इतने आत्मकेन्द्रित हो जाते हैं कि माता-पिता के लिए उनके पास फुरसत नहीं रह जाती है। घर में रखे फालतू सामान की तरह माता-पिता के साथ होता हुआ व्यवहार आज का यथार्थ बनता जा रहा है, जो चिन्तनीय है।

लेकिन आज भी हम हताश नहीं है। 'अन्धेरा अन्धेरा' चिल्लाने के बजाय एक नन्हा-सा दीया भी जलाने का उपाय यदि शेष है तो हमें आशा की एक किरण देखनी होगी। हमारी सभ्यता 'मातृ-देवो भव', 'पितृ-देवो भव' की है। हमारे आदर्श श्रवण कुमार हैं। आज भी भारत पूर्णतः अपसंस्कृत नहीं हुआ है। हमें विश्वास है कि वर्तमान में भी अनेक 'श्रवण कुमार' सब कुछ छोड़कर, माता-पिता की सेवा कर रहे हैं। पुत्रियाँ भी इस कार्य में पीछे नहीं हैं। इनके कार्यों को सम्मान देकर, इनके कार्यों को प्रसारित करने की आज आवश्यकता है, ताकि समाज इनसे प्रेरणा ग्रहण करे और फिर से हमारे आदर्शों की स्थापना हो सके। समाज को एक दिशा मिले, इसके लिए सामाजिक संस्थाओं को आगे आना होगा, ताकि ऐसे पुत्रों और पुत्रियों के कार्यों को प्रचारित-प्रसारित उनके आदर्शों को महिमामण्डित करे।

बिहार के प्रसिद्ध महावीर मन्दिर, पटना के द्वारा 'श्रवण कुमार पुरस्कार योजना' की घोषणा इस दिशा में किया गया श्लाघ्य प्रयास है। 2010 ई. से यह योजना चल रही है। हनुमान् मन्दिर की न्यास समिति श्री महावीर स्थान न्यास समिति, पटना के द्वारा प्रत्येक वर्ष शारीरिक एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर माता-पिता की उत्कृष्ट सेवा करनेवाले पुत्रों एवं पुत्रियों को प्रोत्साहित करने के लिए श्रवण कुमार पुरस्कार की योजना चल रही है।

यह पुरस्कार ऐसे लोगों को दिया जाता है, जो स्वयं शारीरिक एवं आर्थिक रूप में आस्थापूर्वक निःस्वार्थ भाव से अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा कर रहे हैं तथा समाज में चर्चा का विषय बन चुके हैं, एवं जिनका आदर्श अन्य लोगों के लिए भी प्रेरणाप्रद बन गया है। इस प्रकार माता-पिता की निःस्वार्थ सेवा वस्तुतः व्यक्तिगत रूप से की गयी सेवा मानी जायेगी, न कि वृद्धाश्रम के माध्यम से। इस पुरस्कार के लिए महावीर मन्दिर न्यास समिति के द्वारा राज्य मानवाधिकार आयोग के वर्तमान अध्यक्ष, अवकाश प्राप्त न्यायमूर्ति एस. एन. झा की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी है।

इस पुरस्कार के लिए कोई पदाधिकारी, चिकित्सक, स्वयंसेवी संस्थाएँ, मुखिया, सरपंच या कोई जिम्मेदार व्यक्ति नाम की अनुशंसा निःस्वार्थ सेवा सम्बन्धी विभिन्न साक्ष्यों को संलग्न करते हुए महावीर मन्दिर के कार्यालय में भेज सकते हैं। इसके तहत प्रथम पुरस्कार 1 लाख, द्वितीय पुरस्कार 50 हजार, तृतीय पुरस्कार 25 हजार एवं 5 व्यक्तियों को सान्त्वना पुरस्कार 5 हजार रुपये देने की घोषणा की गयी है।

प्रथम बार 2010 ई. में जानकी नवमी के अवसर पर दिनांक 23 मई को इस पुरस्कार का वितरण किया गया। इस वर्ष एक लाख के प्रथम पुरस्कार के लिए किसी को भी उपयुक्त नहीं पाया गया। द्वितीय पुरस्कार के लिए श्रीमती किरण देवी, ग्राम+पो.- मड़वा, प्रखण्ड- बिहपुर, जिला- भागलपुर को उपयुक्त पाया गया। वे अपने लकबाग्रस्त माँ की सेवा 20 वर्षों तक करती रहीं। इनके लिए जिला प्रशासन की भी अनुशंसा मिली थी। इन्हें 50,000 रुपये की राशि एवं प्रशस्ति-पत्र से पुरस्कृत किया गया। तृतीय पुरस्कार निम्नलिखित दो व्यक्तियों को दिया गया। इनमें से प्रत्येक को 25,000 रुपये की राशि एवं प्रशस्ति-पत्र पुरस्कार स्वरूप दिया गया। इन दोनों के नाम हैं- (1) श्री सुनील उपाध्याय, ग्राम-सदाबेह, थाना-दुल्हिन बाजार, बिक्रम, पटना। (2) श्री पंकज कुमार, ग्राम-कुरौनी, पंचायत-मेहुस, जिला- शेखपुरा। प्रोत्साहन पुरस्कार निम्नलिखित छः व्यक्तियों को देने का निर्णय लिया गया।

इसके बाद अगले वर्ष 2011 में भी 11 मई को एक लाख के प्रथम पुरस्कार के लिए श्री शिव कुमार का चयन किया गया। ग्राम+पो.- धनगाँवा, जहानाबाद के मूल निवासी एवं पेशा में प्राइवेट शिक्षक श्री शिव कुमार अपनी लाचार माँ को बँहगी पर लादकर तीर्थाटन कराते रहे हैं, जिसकी चर्चा समाचार पत्रों में भी हुई है। द्वितीय पुरस्कार ग्राम रामनगर, सनकोर्थु सरिसब-पाही, जिला मधुबनी के निवासी श्री उदय कुमार झा को दिया, जो 10-12 वर्षों से रोगग्रस्त, उठने-बैठने में भी असमर्थ 97 वर्षीय पिता तथा अन्धी माता की सेवा पति-पत्नी मिलकर करते रहे हैं। इन्हें 50,000 रुपये की राशि एवं प्रशस्ति-पत्र से पुरस्कृत किया गया। तृतीय पुरस्कार के लिए ग्राम इनरवा, डाकघर औरैया, थाना आदापुर, पूर्वी चम्पारण के मूल निवासी मो. तुफैल अहमद को दिया गया है। इनकी माँ का देहान्त बहुत पहले हो गया है। इनके पिता 80 वर्ष के हैं, जिनका दिमागी सन्तुलन ठीक नहीं है और नित्यकर्म भी बिना सहायता के नहीं कर सकते हैं। श्री तुफैल अहमद अपनी पत्नी के साथ पिता की सेवा अपने हाथों करते रहे हैं। इन्हें 25,000 रुपये की राशि एवं प्रशस्ति-पत्र पुरस्कार स्वरूप दिया गया। प्रोत्साहन पुरस्कार तीन व्यक्तियों को दिया गया।

फिर 29 अगस्त 2013 को प्रथम पुरस्कार के लिए श्री कृष्णानन्द भारती, तोपखाना बाजार, कटघर, जिला- मुंगेर का चयन किया गया। द्वितीय पुरस्कार के लिए श्री गौतम कुमार, ग्राम+पो.- सरसई, जिला- वैशाली को उपयुक्त पाया गया। इन्हें, 50,000 रुपये की राशि एवं प्रशस्ति-पत्र से पुरस्कृत किया गया। तृतीय पुरस्कार के लिए चयन-समिति के द्वारा श्री राजेश कुमार सिंह, विद्यापुरी मुहल्ला, जिला- मधुपरा को चयनित किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रोत्साहन पुरस्कार तीन व्यक्तियों को देने का निर्णय लिया।

महावीर मन्दिर की ओर से ऐसा सार्थक प्रयास करने के बाद भी इस योजना के साथ विडम्बना रही है कि समाज की ओर से अनुशंसा नहीं मिल रही है। अनेक बार समाचार-पत्रों के माध्यम से विज्ञापन दिये जाने पर आवेदन तो मिलते हैं, किन्तु दूसरे लोग अनुशंसा नहीं भेजते हैं। प्रत्येक वर्ष सभी जिलाधिकारियों को पत्र लिखे जाते हैं कि वे भी अपने तन्त्र के माध्यम से ऐसे आदर्श पुत्रों और पुत्रियों के नाम की अनुशंसा करें, किन्तु उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया नहीं मिलती। फलतः कई वर्ष इस पुरस्कार को स्थगित कर देने की स्थिति भी आ रही है। यह भी एक चिन्तनीय विषय है कि क्या समाज अपने किसी ऐसे पड़ोसी श्रवण कुमार के प्रति आस्थावान् नहीं है?

महावीर मन्दिर की ओर से वृद्धों के लिए अन्य सुविधाएँ भी अपने अस्पतालों में दी जी रहीं है। उन्हें शुल्कों में विशेष छूट दी जा रही हैं।

❖